खण्ड 2

औपनिषदिक दर्शनः मूल विषय–I

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड परिचय

उपनिषद् वेदान्त की मूल शिक्षा को रचने वाले हिन्दू ग्रन्थ हैं। उपनिषद् पद का अभिधार्थ है "समीप बैठना" और निहितार्थ है आध्यात्मिक गुरु से अध्ययन करना। यह खण्ड उपनिषदों के दर्शन का परिचय प्रदान करता है, और उनकी मूल शिक्षाओं में से एक मोक्ष की प्राप्ति की विशद चर्चा करता है। यह खण्ड तीन अतिमहत्वपूर्ण उपनिषदों की चर्चा करता है– *प्रश्न उपनिषद्, माण्डूक्य उपनिषद्* और *मुण्डक उपनिषद्*। सभी उपनिषद् स्वतन्त्र ग्रन्थ न होकर किसी न किसी वेद के अंग हैं। प्रत्येक औपनिषदिक शिक्षा विशेष वैदिक मंत्र या अनुष्ठान के संदर्भ में है। वेदान्त परम्पराओं में, उपनिषद् श्रुति प्रस्थान (ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के उपाय श्रुत ग्रंथ) कहे जाते हैं।

इकाई 5 "उपनिषदों के दर्शन का परिचय" है। इस इकाई में आप उपनिषदों के सामान्य आशय को समझेंगे। आपसे न केवल वेद और उपनिषदों की विषय–वस्तु के अन्तर, अपितु भाव में भी अन्तर के बोध की अपेक्षा की जाती है। यह इकाई उपनिषदों में चर्चित विभिन्न दार्शनिक एवं ब्रह्माण्ड–उत्पत्ति के मुद्दों के पर्यवेक्षण में सहायक होगी। इस इकाई से आप यह बोध प्राप्त करेंगे कि औपनिषदिक दर्शन न केवल बौद्धिक उद्यम है, अपितु मानवीय जीवन का पथ–प्रदर्षक है।

इकाई 6 "मोक्ष के विभिन्न उपागमों" के बारे में है। इस इकाई में आप यह समझने का प्रयास करेंगे कि कैसे मोक्ष की अवधारणा औपनिषदिक दर्शन का नैतिक आधार बनाती है। प्रायः सभी भारतीय दर्शन प्रकृति में प्रयोजनवादी हैं, जिसका अर्थ है कि वे किसी उद्देश्य–उन्मुख हैं। औपनिषदिक दर्शन की उद्देश्य–उन्मुखता मोक्ष है। मोक्ष का उद्देश्य हमें यह समझने में सहायता करता है कि जीवन अन्ततः जन्म और मृत्यु की श्रृंखला है और इससे मुक्ति अपेक्षित है। इस प्रकार, कर्म का सिद्धान्त महत्वपूर्ण हो जाता है। मोक्ष प्राप्ति के उपायों में मुख्यतः ज्ञान, कर्म, भक्ति और राजयोग हैं।

इकाई 7 "प्रश्न उपनिषद्" *प्रश्न उपनिषद्* की शिक्षाओं पर आधारित है। ये शिक्षायें अथर्व वेद से विकसित हुई हैं। जैसाकि नाम प्रश्न का निहितार्थ है, यह उपनिषद् प्रश्नों का उपनिषद् है। इस उपनिषद् में छह अध्याय हैं, जोकि सत् के विभिन्न पक्षों के बारे में छह जिज्ञासु शिष्यों द्वारा पूछे गये हैं। ये प्रश्न, प्राणियों के उत्पत्ति, मानवीय व्यक्तित्व के संघटकों, प्राण की उत्पत्ति और प्रकृति, मानवीय व्यक्तित्व के मनोवैज्ञानिक पक्षों, ॐ पर ध्यान के परिणाम, मानव में विराजित तत्त्वमीमांसीय सिद्धान्त के बारे में हैं।

इकाई 8 "मुण्डक उपनिषद्" परा विद्या और अपरा विद्या के मध्य भेद की चर्चा करता है। मुण्डक पद का अर्थ है उपनिषदों की शिक्षा शिष्य को अज्ञान से बचाती (मुक्त करती है) है। इसके तीन अध्याय हैं, जिनमें से प्रत्येक दो अनुभागों में विभक्त है। *मुण्डक उपनिषद्* में लगभग साठ श्लोक हैं। प्रथम अध्याय शिक्षा और शिक्षा की परम्परा की महत्ता को बताता है। दूसरा अनुभाग अपरा विद्या (निम्नतर ज्ञान जोकि अनुष्ठानों, धार्मिक क्रियाओं से सम्बन्धित है) की विवेचना करता है। द्वितीय अध्याय ब्रह्म को ब्रह्माण्ड के कारण रूप में सिद्ध करता है। तृतीय अध्याय आत्म–ज्ञान प्राप्ति के मार्गों एवं उपायों को और आत्म–ज्ञान के लाभों को बतलाता है।

इकाई 9 "माण्डूक्य उपनिषद्" है। इस *उपनिषद्* की मुख्य शिक्षा है कि हममें उपस्थित चेतना सभी अवस्थाओं में एक और समान ही है। चेतना की विभिन्न अवस्थाएं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय में अनुभव की जाती हैं। इन अवस्थाओं में जो समान पक्ष है वही आत्म है। रहस्यात्मक वर्ण "ॐ" जोकि धार्मिक एवं दार्शनिक महत्व रखता है, का चिंतनशील विश्लेषण इस उपनिषद् का अति उल्लेखनीय पक्षों में से एक है।

इकाई 5 उपनिषदों के दर्शन का परिचय[5]

रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 परिचय
5.2 विषयवस्तु का विस्तार
5.3 उपनिषद् का अर्थ
5.4 उपनिषदों में दार्शनिक विधियां
5.5 उपनिषदों के केन्द्रीय विचार
5.6 आत्मा और ब्रह्म
5.7 मोक्ष
5.8 सारांश
5.9 कुंजी शब्द
5.10 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ
5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

यह अध्याय उपनिषदों पर एक व्यापक दृष्टि प्रस्तुत करता है। यह उपनिषद की केन्द्रीय अवधारणाओं और दार्शनिक महत्व को भी दर्शाता है।

5.1 परिचय

उपनिषद् अपनी प्रकृति में धार्मिक भावभूमि वाले दार्शनिक ग्रन्थों का सग्रंह हैं, जिनकी रचना 900–300 ईसापूर्व में हुई, जब भारतीय समाज ने पारम्परिक वैदिक धर्मतन्त्र पर प्रश्न करना आरम्भ कर दिया। ये ग्रन्थ एक आन्तरिक परिवर्तन को जो कि धार्मिक साभार और त्याग (बलि) के सम्बन्ध में नहीं बल्कि मूल रूप से एक आध्यात्मिक खोज के रूप में धार्मिक जीवन को समझने में एक निर्णायक परिवर्तन को चिन्हित करते हैं। उपनिषदों को वैदिक साहित्य के भाग रूप में स्वीकार किया जाता है जिनमें ऋक, साम, यजुर् और अथर्व सम्मिलित हैं। इनमें से प्रत्येक वेद की संहिता, एवं ब्राह्मण तीन प्रकार के क्रम में बांटे गये है, जो अपने विषयवस्तु के सन्दर्भ में अधिकांशतः एक दूसरे से जुड़े हैं ये विधि, अर्थवाद और वेदान्त या उपनिषद हैं। उपनिषद वैदिक संग्रह से सम्बन्ध रखते हैं। जो वेद (वेदस्य अन्तः) के निष्कर्ष भाग के रूप में अस्तित्व में आये, जिनको वेदान्त

[5] श्री दीपक कुमार सेठी, विद्या वाचस्पति शोधक दर्शन केन्द्र जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, अनुवादक– डॉ. अफजल अहमद

कहा जाता है। ये केवल निष्कर्ष भाग नहीं हैं, बल्कि वेदों का मुकुट (ताज) कहे जाते हैं। '*उपनिषदों के सिद्धान्त* के परिचय में, राधाकृष्णन के अनुसार, "प्रारम्भिक समय से साहित्य के रूप में इसकी वृद्धि होती रही है और उनकी संख्या दो सौ से अधिक हो गई है। जबकि यह कहते हैं कि भारतीय परम्परा इसको एक सौ आठ तक मानती है जो कि मुनिका उपनिषद में बनाई गई सूची पर आधारित है। 108 वां स्वयं मुनिका है। सुकुमार अजीकोडे कहते हैं कि दो सौ से अधिक उपनिषदों की खोज की जा चुकी है और 1180 उपनिषदों के विषय के सन्दर्भ देते हैं, लेनिन कहते हैं कि बाद के अधिकतर उपनिषद अनुकरण हैं। यद्यपि दो सौ से अधिक *उपनिषद्* हैं, केवल चौदह को ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया गया है। ये हैं – *ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर, कौषीतकि, महानारायण* और *मैत्री*। ये ग्रन्थ भारतीय विचारधारा में सभी मुख्य दार्शनिक विषयों के मूलभूत आधार प्रदान करते हैं सामान्य रूप से ये विभिन्न प्रचलित व्याख्याओं के मध्य तटस्थ रहे। आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों के विरुद्ध अधिकतर विचारों को उन्होंने समाहित करने का प्रयास किया। उपनिषद 'श्रुति' साहित्य के भाग के रूप में है। श्रुति का अर्थ है 'सुनना'। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उपनिषद् मनुष्य द्वारा नहीं लिखे गये बल्कि ऋषियों को उनका साक्षात्कार हुआ था। प्रत्येक उपनिषद् किसी एक या दूसरे वेद से सम्बन्धित हैं, उदाहरण के लिए, *ऐतरेय उपनिषद् ऋग्वेद* से, *तैत्तिरीय यजुर्वेद* से, *छान्दोग्य सामवेद* से और *प्रश्न अथर्ववेद* से सम्बन्धित है।

5.2 विषय–वस्तु का विस्तार

ऋग्वैदिक काल से आधुनिक दर्शन तक की सम्पूर्ण भारतीय परम्परा औपनिषदिक साहित्य के बारे में एक महत्वपूर्ण तथ्य बताती है कि *उपनिषद्* दार्शनिक प्राक्कल्पना के क्षेत्र में मानवीय प्रज्ञा या विचार–शक्ति के उच्चतम उत्पाद हैं। इनकी अद्वितीयता परम सत्य की समस्या अथवा प्राचीन समय से चली आ रही दुःख और संताप की समस्या की प्रकृति को जानने और उसके व्यावहारिक समाधान के लिए समग्रतापूर्ण दृष्टि में है। इनकी वर्तमान प्रासंगिकता दर्शाती है कि मानवीय विकास के समस्त आयामों चाहे यह वैज्ञानिक हो अथवा आध्यात्मिक के बारे में इनके विचार सार्वभौमिक प्रकृति के हैं।

उपनिषद् सत्य से साक्षात्कृत् ऋषियों की शिक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं; जो स्वयं सत्य हो गये (ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति– जो ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्म हो जाता है)। उपनिषदों का उद्देश्य बौद्धिक संतुष्टि मात्र नहीं है, अपितु जीवन की परम समस्याओं का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करना भी है। यह प्रतीत होता है कि मोक्ष की अवधारणा, चतुर्थ पुरुषार्थ या जीवन का अन्तिम लक्ष्य, औपनिषदिक विचारों में अपने पूर्णतम रूप में स्थापित हुआ है। क्रमिक रूप से, *उपनिषद्* जीवन के वैदिक लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम के एक कदम आगे बढ़े। वस्तुतः, *उपनिषद्* जीवन की समस्त जिज्ञासाओं के लक्ष्य के रूप में मोक्ष को प्रस्तुत करते हैं। चूंकि, समस्त व्यावहारिक अनुभवों की प्रकृति अस्थिर है, सांसारिक जीवन अन्ततः दुःख और पुनर्जन्म के चक्र की ओर ले जाता है। अतः, मानव सदा ही दुःख को पूर्णतः समाप्त करने के तरीके को खोज रहा है और अमरत्व की अवस्था में पहुँचना चाहता है। उपनिषदों के अनुसार, यह आत्म की प्रकृति को जानने से प्राप्त किया जा सकता है। उपनिषदों की शिक्षाओं का सैद्धान्तिक आयाम निम्नलिखित तीन मुद्दों के अन्तर्गत् है–

1. मानव का सारतत्त्व– आत्म

2. संसार या जगत का सारतत्त्व– ब्रह्म

3. आत्म और ब्रह्म के मध्य का सम्बन्ध

किन्तु, भारतीय परम्परा में, सिद्धान्त और व्यवहार साथ–साथ हैं। लोग दर्शन करते नहीं हैं, बल्कि जीते हैं। रमण महर्षि, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, गाँधी, आदि ये लोग हैं जिन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया और समाज को मानव जीवन के सत्य अर्थ और लक्ष्य को दर्शाया। यह व्यावहारिक पक्ष जीवन के उच्चतम लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए उच्चतम सत्य का साक्षात्कार है और *उपनिषद्* आत्म–साक्षात्कार के अधिकतम व्यावहारिक दर्शन को प्रस्तुत करते हैं। औपनिषदिक दर्शन के अनुसार, मानव का परम सार शुद्ध–चेतना है, जिसे आत्मा कहते हैं और यह जगत के सारतत्त्व जोकि ब्रह्म कहलाता है, से तादात्म्य रखती है। इस सत्य के व्यावहारिक साक्षात्कार में, व्यक्ति को उचित पद्धतिपरक और आनुभविक दृष्टि से गुजरने की आवश्यकता है, जिन्हें औपचारिक ज्ञानमीमांसीय अध्ययन के अन्तर्गत् संरचित किया जा सकता है और इसे आत्म–साक्षात्कार की ज्ञानमीमांसा कहते हैं।

5.3 उपनिषद् का अर्थ

पॉल डायसन ने उपनिषद् शब्द को इस प्रकार प्रस्तुत किया – उपनिषद् के तीन अलग–अलग अर्थ होते हैं – (1) पवित्र शब्द, (2) पवित्र ग्रन्थ, (3) पवित्र उपदेश। *कठोपनिषद* की प्रस्तावना में, उपनिषद् शब्द का वर्णन इस प्रकार हुआ है : शब्द 'उपनिषद्' बना है – उप (समीप) और नि (ध्यानपूर्वक) एक उपसर्ग के रूप में उप है, और एक अंतसर्ग के रूप में मूल सद (बैठना), जिसका अर्थ है नाश करना (विशरण), गति (प्राप्त करना) एवं शिक्षित करना (अवसादन)। और शाब्दिक रूप से, उपनिषद्, ग्रन्थों में चर्चित होने वाले श्रेय तत्व के ज्ञान को सूचित करता है। महत्ता से सम्बद्ध होने के गुण के कारण ज्ञान उपनिषद् कहलाता है। इसका अर्थ है कि शिष्य का अपने गुरू के पास भूमिभाय से बैठना कोई एकमात्र शारीरिक अवस्था या आसन का विषय नहीं है लेकिन यह आवश्यक रूप से परम सत के विषय में दिशा निर्देशों की प्राप्ति करना है, जो शिष्य के सभी सन्देहों को दूर करते हैं और सभी अज्ञान को नष्ट करते हैं। आगे इसका कहना है कि उन मुमुक्षुओं के सन्दर्भ में जो दृष्ट और अदृष्ट वस्तुओं की कामनाओं से रहित हो गये हैं ये एक ऐसे ज्ञान की ओर उन्मुक्त होते हैं जो उपनिषद् कहलाता है जो उसे अपने आचरण में ढालते हैं और निश्चितता और स्थिरता के साथ साधना करते हैं। यहां उपनिषदों का वर्णन ज्ञान के सन्दर्भ में किया गया हैं। यह ज्ञान मुमुक्ष द्वारा प्राप्त किया जाता है, जो स्वयं को सांसारिक वस्तुओं और इच्छाओं से अनासक्त कर चुका है और वह स्थिरता और दृढ़ता के साथ इस ज्ञान पर चिन्तन कर सकता है उपनिषदों में ज्ञानमीमांसीय समस्याओं, तत्वमीमांसीय प्रश्नों, नैतिक सरोकारों को प्रस्तुत एवं संबोधित किया गया है यद्यपि ये अपने स्वरूप में सुव्यवस्थित एवं तन्त्रबद्ध नहीं हैं। *कठोनिषद्* बताता है कि 'प्राचीन समय के दिनों में, इस सम्बन्ध में देवताओं ने भी इन सन्देहों पर विचार किया; सूक्ष्म (गूढ़) होने के कारण, इस तत्व (आत्मा) को ये शुद्ध रूप (सही अर्थों) में नहीं समझे। आत्मा को समझना बहुत कठिन है जबकि देवताओं को इस कठिन विषय अर्थात् आत्मा पर कोई सन्देह नहीं होता। आत्मा के सूक्ष्म स्वभाव के कारण इसको समझना जटिल होता है।

जैसा कि पहले चर्चा हो चुकी है, वेद चार हैं और प्रत्येक के भाग हैं – संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। संहिता दैवी एवं देवताओं को प्रसन्न करने हेतु मंत्रों का संग्रह है, ब्राह्मणों का सम्बन्ध यज्ञानुष्ठानों से है। आरण्यक ध्यान के अनुशीलन की व्याख्या से युक्त है। उपनिषद् अस्तित्व और इसके उद्देश्य एवं सत्ता के स्वरूप सम्बन्धी मूलभूत समस्याओं पर दार्शनिक चिन्तन (निबन्ध) हैं। संहिताओं से उपनिषदों में होने वाले संक्रमण की तुलना भोर के धुंधलके के दिन के सूर्य की प्रखर द्युतिमान ज्योति में बदलाव से की जा सकती है। मंत्रों में जो कुछ अर्न्तनिहित अथवा ध्वनित है वह दार्शनिक ग्रन्थों में गवेषणा के परिणामस्वरूप स्पष्ट रूप धारण कर लेता है। उदाहरण के लिए पुरुष सूक्त में वर्णित महत् पुरुष जो हजारों सिर, आंख और पैरों से युक्त है, को ऐसी सर्वव्यापक चेतन सत्ता समझा जा सकता है जो प्रत्येक वस्तु का साक्षी होती है।

उपनिषद् की समस्त शिक्षायें आत्मा और इसकी अवधारणाओं पर केन्द्रित हैं। आत्मा का पद उपनिषदों में सर्वव्यापी आत्मा या ब्रह्म और जीवात्मा या आत्मन दोनो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। निरपेक्ष सत एक है जो ब्रह्म है और इस जगत में, सभी दूसरे जीवात्मा उस परम ब्रह्म का ही प्रतिरूप हैं। जब तक प्रातिभासिक जगत कार्यरत रहता है, जीव सार्वभौम निरपेक्ष सत्ता से पृथक अपना अस्तित्व बनाये रखते हैं। कर्मफल के सम्बन्ध में कोई व्यभिचार नहीं देखा जाता, विभिन्न जीव बुद्धि, इन्द्रिय एवं अहंकार से संयुक्त होकर अपना वैशिष्ट्य बनाये रखते हैं। आत्मा दैवी चेतना के विचार का प्रतिनिधित्व करती है और विभिन्न आत्मायें परमात्मा के ही अंश हैं। आत्मा दैवीय सृष्टिकर्ता से अपनी पूर्णतः के विचार को प्राप्त करती है जो आत्मा को अस्तित्व प्रदान करता है। आत्म चैतन्य और आनन्द को किसी बाह्य विषय की अपेक्षा नहीं होती। जीवात्मा का अर्थ– शरीर, इन्द्रिय और मन की उपाधियों से युक्त असीमित आत्मा है। जब हम आत्मा के सम्बन्ध में कुछ औपनिषदिक विवरणों की चर्चा करते हैं तो आत्मा सम्बन्धी आशय स्पष्ट होने लगते हैं। उपनिषदों में वर्णित आत्मा की चर्चा हम आगे के अध्याय में करेंगे।

बोध प्रश्न 1

ध्यातव्य : क) उत्तर के लिए प्रदत्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गये उत्तर से अपने उत्तर की जांच कीजिए।

1. उपनिषदों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बारे में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. उपनिषदों की हमारे जीवन में क्या प्रासंगिकता है?

.....

.....

.....

.....

3. उपनिषदों की केन्द्रिय शिक्षाएं क्या हैं?

5.4 उपनिषदों में दार्शनिक विधियां

उपनिषद् संवाद परम्परा के रूप में जाने जाते हैं।

संवादात्मक विधि उपनिषदों की एक प्रमुख विशेषता है। इसके द्वारा विश्लेषित की जाने वाली प्रत्येक अवधारणायें, प्रश्नोत्तर, व्याख्यान, दृष्टान्त, रूपक आदि विशेषताओं वाले संवाद से युक्त हैं। जैसाकि आगे की पंक्तियों में कई प्रकार के संवादों को दर्शाया गया है। *छान्दोग्य उपनिषद्* में पिता उद्दालक और पुत्र श्वेतकेतु के बीच संवाद, *छान्दोग्य* में सत्यकाम और उसकी माता जबला के बीच संवाद, *बृहदारण्यक* में प्रजापति और उसके पुत्र के बीच संवाद, *कठ* में यम और नचिकेता, *छान्दोग्य उपनिषद्* में नारद और सनत्कुमार के बीच संवाद, ये प्रसिद्ध उदाहरण हैं कि किस प्रकार दार्शनिक अवधारणाओं को विकसित करने हेतु संवाद पद्धति का उपयोग किया गया। संवाद के द्वन्द्वन्याय तक में संवाद दो व्यक्तियों के बीच चलने वाली संकल्प तर्क, वितर्क और विचारों के परस्पर सम्पूरक की प्रक्रिया है। संवाद के साथ एक ऐसी प्रविधि का विकास हुआ जिसमें दूसरे विचारकों के साथ वाद–विवाद अनिवार्य थे। यह एकालाप के बिल्कुल विपरीत है जिसमें एक बद्धमूल विचार के अतिरिक्त कुछ भी स्थापित नहीं होता। इस विधि के अन्तर्गत् यह मांग की जाती है कि विरोधी को उस विवाद के विषय से सम्बन्धित अपने विचार प्रकट करने और बोलने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। इस प्रकार संवाद तभी सम्भव है जब दोनों वक्ता (क) बोलें (ख) सुनें (ग) उनका लक्ष्य सत्य की प्राप्ति हो (घ) एक–दूसरे की भाषा को समझें (ड) एक दूसरे के सोचने के ढंग को समझें (च) दो नितान्त भिन्न दृष्टिकोण से विषयवस्तु को न देखें। इस प्रकार संवाद की प्रक्रिया दोनों के बीच असहमति एवं सर्वसम्मति से आगे बढ़ती है। संवादात्मक विधि को दो प्रकार से देखा जा सकता है– पहला, एक तर्क प्रणाली के रूप में, यह दूसरे पक्ष के विचारों में से विरोधाभास को निकालता है। प्रश्न के पक्ष–विपक्ष की परीक्षा करने के पश्चात् और इस गतिरोध से निकलने के लिए विद्यमान से उच्च अवस्था में जाना ही एक मार्ग शेष रह जाता। यह पद्धति एक ऐसी ही स्पष्ट चेतना को आगे लाती है। दूसरा, उच्च स्तर पर, अन्तर्विरोध का यह समाधान करता है उनको समाप्त करता है एवं उनमें निहित निषेधात्मकता का अन्त कर देता है। उदाहरण के लिए उद्दालक और नचिकेता के बीच संवाद में, हम पाते हैं कि यह इन्द्रिय अनुभवों अर्थात् व्यावहारिक अन्तर्विरोध को सुलझाने के उद्देश्य से हम पारमार्थिक स्तर पर जाते हैं। संक्षेप में, इस बात की हमेशा सम्भावना बनी रहती है कि अपेक्षाकृत उच्च विचार अथवा श्रेष्ठ दार्शनिक की आप्तता को स्वीकार करते हुये अन्तर्विरोधों को दूर किया जाए।

उपनिषदों का व्याख्याशास्त्र की दृष्टि से भी अध्ययन किया जा सकता है। व्याख्याशास्त्र किसी एक ग्रन्थ में अस्पष्ट अर्थ को खोजने का प्रयास और उसकी व्याख्या एवं अवबोध का एक तंत्र है। व्याख्याशास्त्र ग्रन्थ के छिपे हुये (गहन) अर्थ को जानने में हमारी सहायता करता है। व्याख्या संवाद की पद्धतियों में से एक पद्धति है। व्याख्याशास्त्र एक पद्धति के रूप में, किसी ग्रन्थ की समझ/व्याख्या के विभिन्न प्रकारों की ओर संकेत करता है। व्याख्याशास्त्र धार्मिक एवं कानूनी ग्रन्थों की व्याख्या की पद्धति के रूप में आरम्भ होता है। यह केवल लिखित ग्रन्थों के सभी रूपों को ही सम्मिलित नहीं करता बल्कि इसकी स्वयं की व्याख्यात्मक प्रक्रिया होती है।

दूसरी पद्धति कहानी है। कहानी हमें बहुत ही स्पष्ट रूप से अवधारणाओं को समझा देती है और कहानी का उद्देश्य उस अवधारणा के नैतिक निहितार्थ को हम तक पहुंचाना होता है। *छान्दोग्य उपनिषद्* में देवता और दैत्य की प्रसिद्ध कहानी का वर्णन।

5.5 उपनिषदों के केन्द्रिय विचार

उपनिषदों में पृथ्वी की उत्पत्ति, आत्मा की सत्तामीमांसा, शरीर, आत्म और द्रव्य, सत्य ज्ञान का अर्थ, जगत का स्वरूप (स्वभाव), बन्धन और मोक्ष इत्यादि पर चर्चा हुई है। जबकि कुछ छंद मंत्रों और स्तुतियों के रूप में हैं। उपनिषद् में लघुकथायें, गुरु और शिष्य के बीच, पिता और पुत्र के बीच, अलौकिक शक्ति के रूप में पात्र और मानव जीव (मनुष्य) के बीच एवं पशुओं और मनुष्य के बीच संवाद हैं। अधिकतर संवाद वास्तविक (सत्) और अवास्तविक (असत्), पवित्र और अपवित्र, सत्य और असत्य के बीच चर्चा पर केन्द्रित हैं। उपनिषदों को स्व–व्याख्याती के रूप में भी चिन्हित किया गया है। उदाहरण के लिए ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन गुणों से रहित के रूप से होता है जोकि यह भी एक प्रकार से कई गुणों की व्याख्या कर देता है। यद्यपि *उपनिषद्* विचारों का कोई एक व्यवस्थित तन्त्र होने का दावा नहीं कर सकते किन्तु ये कुछ आधारभूत सामान्य सिद्धान्तों का विकास क्रम अवश्य प्रदर्शित करते हैं। उनमें से कुछ सिद्धान्त संसार, कर्म, धर्म और मोक्ष हैं। इन सिद्धान्तों के द्वारा एक तत्वमीमांसीय रूपरेखा आकार लेती है, जिसे न्यूनाधिक परिवर्तनों के साथ अधिकतर भारतीय धर्मों और दार्शनिक सम्प्रदायों के द्वारा अपनाया गया है। संसार की अवधारणा में पुर्नजन्म का यह विचार कि मृत्यु और पुनरूत्थान के एक नियमित चक्र में, मृत्यु के पश्चात् हमारी आत्मा सम्भवतः एक पशु में, सम्भवतः एक मनुष्य के रूप में, सम्भवतः एक देवता के रूप में किसी दूसरे शरीर में पुनः जन्म लेगी। दूसरी अवधारणा कर्म है जिसका शाब्दिक अर्थ है "कृत्य", जिसका आशय है कि सभी कर्मों का फल मिलता है या तो अच्छा या बुरा। कर्म अगले जन्म की परिस्थिति को ? निर्धारित करता है, जैसा कि हमारा जीवन हमारे पूर्व कर्मों द्वारा प्रतिबंधित है। सामान्य रूप से इस *ब्राह्मण* में एक अवैयक्तिक, प्राकृतिक और शाश्वत विधान कार्य कर रहा है जिसमें कोई निर्णय या क्षमा नहीं है। जिन्होंने अच्छे कर्म किये वे अधिक अच्छी स्थितियों में पुनः जन्म लेंगे जबकि वे जिन्होंने बुरा किया वे अधिक बुरी स्थितियों में पुनः जन्म लेंगे। धर्म का अर्थ है "उचित आचरण" अथवा "कर्तव्य" जिसका आशय है कि हम सभी के सामाजिक उत्तरदायित्व हैं जिनकी पूर्ति की जानी है। एक विशेष जाति के प्रत्येक सदस्य के उत्तरदायित्वों का विशेष निर्धारण है अर्थात् एक धर्म है। उदाहरण के लिए क्षत्रियों (योद्धाजाति) के लिए शैय्या पर मरना एक पाप माना जाता था और युद्ध क्षेत्र में मरना एक उच्च सम्मान था उनका यही लक्ष्य भी होता था। दूसरे शब्दों में, धर्म विभिन्न सामाजिक समूहों के लोगों को, उनके कर्तव्यों के पालन को बढ़ावा देता था जिसे

यह श्रेष्ठ प्रकार से कर सकें। मोक्ष का अर्थ 'मुक्ति' और 'छुटकारा' होता है। मृत्यु और पुनर्उत्थान के शाश्वत चक्र को बिन्दुशून्य पुनरावृत्ति जिसके साथ कोई परम उद्देश्य जुड़ा है, के रूप में देखा जा सकता है। दुःखों से मुक्ति और शाश्वत शान्ति की खोज असम्भव प्रतीत होती है, शीघ्र अथवा बाद के लिए हम और भी बुरी स्थिति में पुनः जन्म लेंगे। मोक्ष इस कभी न अन्त होने वाले पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति है, इस पुनर्वृत्ति से पलायन का भाग है। किन्तु इस चक्र से छुटकारा पाने का क्या आशय है? एक जीवात्मा को सांसारिक बन्धन से मुक्त होने के लिए किन शर्तों को पूरा करना होता है? इन प्रश्नों के उत्तर देने के लिए हमें आत्मा और ब्रह्म पर दृष्टिपात करने की आवश्यकता है।

उपनिषद् परम सत् की जिज्ञास्य विषय बतौर और इसके साक्षात्कार की प्रक्रिया की चर्चा करते हैं। जब हम उपनिषदों का अध्ययन करते हैं, तो हम विद्या के दो विभाजन, परा और अपरा विद्या को पाते हैं। परा विद्या परम सत् का ज्ञान है, वहीं अपरा विद्या आनुभविक जगत का ज्ञान है। भिन्न ढंग से इसी तरह का विभाजन कठोपनिषद् में श्रेयस् एवं प्रेयस् और विद्या एवं अविद्या के रूप में मिलता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् विद्या अविद्या का विभाजन करते हुए कहता है कि विद्या अमृत है और अविद्या क्षर (नाशवान) है। ज्ञान या विद्या का यह विभाजन अनुभव के उच्च एवं निम्न स्तर स्वीकारने से सम्बन्धित है। जहाँ परा उच्च और अपरा निम्न स्तर से सम्बन्धित है। ये दोनों स्तर, जिनमें ये विद्याएं आश्रय ग्रहण करती हैं और जिनमें व्याख्याएं घटित होती हैं, पारमार्थिक और व्यावहारिक स्तर कहलाते हैं। इस प्रकार हम, सत् के दो स्तर अनुभवातीत एवं आनुभविक जिन्हें ब्रह्म और प्रत्ययगोचर जगत कह सकते हैं, पाते हैं।

बोध प्रश्न 2

ध्यातव्य : क) उत्तर के लिए प्रदत्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गये उत्तर से अपने उत्तर की जांच कीजिए।

1. वेद के कितने विभाग हैं? ये कौन से हैं? प्रत्येक की व्याख्या करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2. उपनिषदों की दार्शनिक पद्धति क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

5.6 आत्मा और ब्रह्म

लगभग सभी प्रमुख उपनिषदों में सत् की संकल्पना पर विचार किया गया है और मुख्य रूप से हमारा अपना वास्तविक स्वरूप क्या है, इसका गहन परीक्षण किया गया है। वस्तुनिष्ठ पक्ष से इस प्रकार की वास्तविकता को ब्रह्म कहते हैं विषय पक्ष से इसे आत्मा कहते हैं। आत्मा क्या है? यह ऐसा विषय है जो घूमने, स्वप्न में, सोने में, मृत्यु, पुनर्जन्म और पूर्ण मुक्ति की अवस्थाओं अर्थात् इन सभी परिवर्तनों में शाश्वत रहता है। उपनिषदों के अनुसार हमारे अस्तित्व का केन्द्रीय भाग न शरीर है, और न ही मन है किन्तु आत्मा है। सभी प्राणियों का उसके अंतर्तम सार में, केन्द्रीय भाग आत्मा है। ध्यान द्वारा सीधे अनुभव से इसको समझा जा सकता है। यह तब होता है जब हम अपने अस्तित्व की अनुभूति के सबसे गहरे स्तर पर होते हैं। उपनिषद् आत्मा को एक सत्तामूलक जीव, एक ज्ञानमीमांसीय विषय, एक नैतिक प्राणी, एक मनोवैज्ञानिक प्राणी इत्यादि के रूप में पेश (प्रस्तुत) करता है। उपनिषदों में प्रयुक्त 'आत्मा' पद को सार्वभौमिक आत्मा अर्थात् ब्रह्म और जीवात्मा दोनों अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। जीवात्मा का पांच कोषों के समूह के रूप में वर्णन किया गया है। पहला कोष अन्नमय कोष अर्थात् अन्नकोष है। यह हमारे भौतिक शरीर की निरूपण करता हैं। दूसरा कोष है प्राणमय कोष जो जीवंत ऊर्जा के कोष को सूचित करता है। जीवंत ऊर्जा हमारे श्वासों में अपरिष्कृत ढंग/अनुसरण को खोजती है। तीसरा कोष मनोमय कोष है जो हमारे मन को प्रकट करता है यह हमारी इच्छाओं, भावनाओं और कल्पनाओं के स्रोत के रूप में कार्य करता है। चौथा कोष विज्ञानमय कोष है जो कि हमारी बौद्धिकता का परिचायक है। और अन्तिम सत्तामूलक कोष आनन्दमय कोष है जो जीव के आनन्द के पहलू का निरूपण करता है ये सभी मिलकर आत्मा के स्वरूप की रचना करते हैं परम सत्ता केवल एक है जो ब्रह्म है और इस जगत में अन्य सभी जीव उस परम सत्ता ब्रह्म का प्रतिबिम्ब हैं। जब तक प्रति मासिक जगत कार्यरत रहता है। जीव सार्वभौम निरपेक्ष सत्ता से पृथक अपना अस्तित्व बनाये रखते हैं। कर्मफल के सम्बन्ध में कोई व्यभिचार नहीं देखा जाता, विभिन्न जीव बुद्धि, इन्द्रिय एवं अहंकार से संयुक्त होकर अपना वैशिष्ट्य बनाये रखते हैं। आत्मा दैवी चेतना के विचार का प्रतिनिधित्व करती है और विभिन्न आत्मायें परमात्मा की ही अंश हैं। आत्मा दैविक सृष्टिकर्ता से पूर्णता का विचार लेती है जिसने इनको अस्तित्व प्रदान किया है। आत्म चेतन और आनन्द को किसी बाह्य विषय की अपेक्षा नहीं होती। जीवात्मा का अर्थ शरीर, इन्द्रिय और मन की उपाधियों से सीमित आत्मा है। *उपनिषद्* स्वीकार करता है कि आत्मा एक है लेकिन जीवात्मा के रूप में कई रूपों में व्यक्त होती है। *श्वेताश्वर उपनिषद्* में कहा गया है कि "असीम ब्रह्म अपने असीम प्रतिरूप से स्वयम् को प्रकट करता है, इसकी सीमायें जिसके द्वारा यह स्वयं को ईश्वर मानव, पशु एवं वनस्पति आदि रूपों में प्रकट करता है। अनादि काल से अनिर्वचनीय माया (प्रकृति) के साथ संयोग के द्वारा एक और अखण्ड आत्मा सभी सत्ताओं में विद्यमान रहती है, जैसे कि एक अखण्ड आकाश अनेक घटों में विद्यमान रहता है और एक, अद्वितीय सूर्य असंख्य जलाशयों में प्रतिबिम्बित होता है। इस संयोग के द्वारा एक और अखण्ड आत्मा समस्त जगत में व्याप्त होकर अस्तित्वमान रहता है। परम तत्व एक है जो ब्रह्म है और इस जगत में अन्य दूसरे जीव उस एक परम ब्रह्म का प्रतिबिम्ब हैं। ब्रह्म इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधारभूत तत्व है। यह अपरिवर्तनीय "निरपेक्ष सत्ता" सम्पूर्ण अस्तित्व का अमूर्त सार है यह अमर और अपरिवर्तनीय बीज रूप है जो प्रत्येक वस्तु को उत्पन्न करता है और उनका पोषण करता है। सभी वर्णनों और बौद्धिक समझ से यह परे है। जब तक प्रातिभासिक जगत कार्यरत रहता है, जीव सार्वभौम निरपेक्ष सत्ता से पृथक अपना अस्तित्व बनाये रखते हैं। कर्मफल के सम्बन्ध में कोई व्यभिचार नहीं देखा जाता,

विभिन्न जीव बुद्धि, इन्द्रिय एवं अहंकार से संयुक्त होकर अपना वैशिष्टय बनाये रखते हैं। आत्मा दैवी चेतना के विचार का प्रतिनिधित्व करती है और विभिन्न आत्मायें परमात्मा के ही अंश हैं। इसके द्वारा जीवात्माओं की अनेकता की व्याख्या होती है। आत्मा को अपने शुद्ध रूप में सभी संयोगो से परे एवं ब्रह्म के स्वरूप वाला बताया गया है। उपनिषदों की महान अन्तःदृष्टियों में से एक यह है कि आत्मा और ब्रह्म एक समान तत्व से बने हैं। जब एक व्यक्ति मोक्ष या मुक्ति पाता है, तब आत्मा ब्रह्म में अपने स्रोत के रूप में जैसे सागर में एक जल की बूंद लौटती है, उस प्रकार लौट जाती है। उपनिषद् दावा करते हैं कि यह एक भ्रम है कि हम सभी पृथक हैं, अहंकार, पुनर्जन्म, दुःख जिनका हम अपने जीवन पर्यन्त अनुभव करते हैं उनसे मुक्त हो सकते हैं। एक सन्दर्भ में, मोक्ष का अर्थ ब्रह्म, महान विश्वात्मा में, पुनः आत्मसात होना होता है। यह कहा जाता है कि यह महान अजन्मा आत्मा, शाश्वत, अक्षय, अमर, अभय वस्तुतः ब्रह्म ही है। इस प्रकार आत्मा, शरीर और इन्द्रियों के बीच का सम्बन्ध सभी उपनिषदों द्वारा दिया गया है। पांच महावाक्यों के आधार पर आत्मा और ब्रह्म के बीच के सम्बन्ध और स्वभाव की व्याख्या की जा सकती है।

1. प्रज्ञानं ब्रह्म "चित ब्रह्म है" (*ऐतरेय उपनिषद्*)
2. अहं ब्रह्म अस्मि "मैं ब्रह्म हूँ" (*बृहदारण्यक उपनिषद्*)
3. तत्त्वमसि "यह ब्रह्म तू है" (*छान्दोग्य उपनिषद्*)
4. अयम् आत्मा ब्रह्म "यह आत्मा ही ब्रह्म है" (*छान्दोग्य उपनिषद्*) (*तैत्तिरीय उपनिषद्, बृहदारण्यक उपनिषद्*)
5. सर्व खलु इंद ब्रह्म "यह सब कुछ ब्रह्म है" (*छान्दोग्य उपनिषद्*)

5.7 मोक्ष

प्रमुख उपनिषदों में मोक्ष की विस्तृत रूप से चर्चा की गई है। मोक्ष मूल 'मुच्' से आया है जिसका अर्थ 'मुक्त होना' है। इस प्रकार मोक्ष का आशय मुक्ति है। यह जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति है और सहवर्ती दुखों का एक परिणामी अन्त है। उपनिषदों के अनुसार जीवन का परम उद्देश्य है कि व्यक्ति की पुर्नजन्म के चक्र से मुक्ति हो। उपनिषदों के कई अंशों में मोक्ष के स्वरूप का वर्णन मुक्त आत्मा अर्थात् मुक्त जीव के रूप में किया गया है। उपनिषदों के अनेक अंशों के अनुसार आत्मा के सत्य ज्ञान के द्वारा यह मुक्ति मिलती है और इस प्रकार इच्छा और प्रेम की उच्चतम वस्तु आत्मा है। *बृहदारण्यक उपनिषद्* के अनुसार "आत्मा पुत्र से भी प्रिय होती है सम्पत्ति से भी प्रिय होती है, हर एक वस्तु से प्रिय होती है और अन्तर्तम होती है यदि किसी एक ऐसे व्यक्ति की बात करें जो आत्मा को छोड़कर के किसी और वस्तु को प्रिय कहता है तो इसकी पूरी सम्भावना है कि यह व्यक्ति उस वस्तु को कभी न कभी खो देगा जिसे यह प्रिय कहता है केवल आत्मा को ही प्रिय जानकर उसका चिन्तन करना चाहिए जो केवल आत्मा को प्रिय मानता हुआ उसका चिन्तन करता है तो यह जो कुछ भी प्रिय मानता है यह कभी नष्ट नहीं होगा। इसका तात्पर्य यह है कि जो कोई परम लक्ष्य के रूप में मुक्ति के अलावा अन्य कुछ धारण करता है यह उसे संसार के भंवर में खो देगा। और एक ये जो मुक्ति की आकांक्षा रखते हैं ये न केवल एक सार्थक जीवन जीते है, बल्कि संसार का आनन्द भी लेते हैं। पुनः *छान्दोग्य उपनिषद्* के अनुसार, "जिस प्रकार कर्मों के द्वारा प्राप्त इंद्रलोक (पार्थिव जीवन) नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार धर्माचरण से फलीभूत पुण्यों से प्राप्त पर लोक भी नष्ट हो जाता है, जो आत्मज्ञान

के बिना ही शरीर त्याग देते हैं ये अपनी कामनाओं के बन्धन के कारण वास्तविक मुक्ति से दूर बने रहते हैं''। इस प्रकार उपनिषद् निश्चयपूर्वक बताते हैं कि सच्चे अर्थ में मुक्ति का साधन केवल आत्मज्ञान है। मीमांसा सम्प्रदाय जिसमें वैदिक कर्मकाण्डों पर बल दिया गया है यह भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं कराते हैं। *कठोपनिषद्* के अनुसार, ''यदि कोई शरीर त्याग से पहले ही उस तत्व का दर्शन कर लेता है तो यह समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है, ऐसा न होने पर यह सृष्टा लोकों में पुनः शरीर धारण करता है''। यह सूक्ति इस प्रकार से समझी जा सकती है कि यदि एक व्यक्ति अपनी आत्मा के सच्चे स्वभाव को जान लेता है तब आगे पुर्नजन्म नही होता, दूसरे शब्दों में, उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए अन्तस में दिव्यता की अनुभूति ही दुःखों की निवृत्ति का मार्ग हैं क्योकि ये सांसारिक अस्तित्व अपने अन्तिम विश्लेषण में दुःख के सिवा कुछ और नहीं।

मोक्ष की प्राप्ति कैसे होती है? ध्यान अन्तर्वीक्षण तथा यह ज्ञान/अनुभूति कि सभी रूपों और आवरणों से परे जो ज्ञाता (विषयी) और श्रेय (विषय) एक ही है, और हम सभी उस एक ही अखण्ड सत्ता के अंश हैं, ये सारे मोक्ष के साधन हैं। सभी उपनिषद इस विषय में एकमत हैं कि मनुष्य स्वाभाविक रूप से जीवात्मा और ब्रह्म के बीच परम के सम्बन्ध में अज्ञात का शिकार है। ध्यान का एक प्रमुख लक्ष्य ब्रह्म के साथ इस एकभाव को प्राप्त करना है और उस अज्ञान का त्याग करना है जो इस ऐन्द्रिय जगत के साथ भ्रमपूर्ण पहचान बनने से पैदा होता है अज्ञान के साथ साथ शरीर इन्द्रिय, मत, विचार, जन्म, मृत्यु, नामरूप, कर्मविचार इन उपाधियों के कारण आत्मा परमात्मा से अलग है। किन्तु, जब ये विभिन्नतायें नष्ट कर दी जाती हैं, तब आत्मा अद्वैत हो जाती है, जोकि केवल एक महान आत्मा है जो हर वस्तु का कारण है। सत्य ज्ञान के साधन से शरीर के तत्वों, नाम, रूप की ब्रह्म में समाप्ति हो जाती है। इस स्वरूप को ग्रहण करने के बाद विषयगत चेतना नहीं रहती। जब द्वैत रहता है तब व्यक्ति कुछ सूंघता है, कुछ देखता है, कुछ बोलता है कुछ सोचता है कुछ जानता है; तब ऐसी स्थिति में, चेतना ज्ञाता पथ और ज्ञेय पथ के द्वारा चिन्हित की जाती है। जब पूर्ण ऐक्य होता है, तब द्वैत और अज्ञान को ज्ञान के द्वारा नष्ट कर दिया जाता है तब देखने, सुनने एवं सोचने के सभी साधन (कोई माध्यम) शेष नहीं रहते। यह पूर्ण एकता एवं एकतत्व और अद्वैत की अवस्था है।

मुण्डक उपनिषद् के अनुसार, ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'', जिसका अर्थ है जो उस परम ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्म ही जाता है। जबकि मुक्ति के मार्ग में प्रवेश करने से पहले व्यक्ति को उसकी पात्रता एवं योग्यता अर्जित करनी होती है। *कठोपनिषद्* के अनुसार, ''प्रत्येक व्यक्ति परम आत्मा के पवित्र ज्ञान को जानने योग्य नहीं हो सकता। वह जो स्वयं को पाप कर्म करने से नहीं बचाता, जिसने अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रित नहीं किया, जिसका मन एकाग्र नहीं होता; जिसका मन शान्त नहीं होता, वह ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति नहीं कर सकता''।

ज्ञान श्रवण अर्थात् गुरु से जीवात्मा और परमआत्मा के स्वभाव के विषय में सुनना, मनन अर्थात् उन सत्यों पर युक्तिपूर्वक विचार करना और निदिध्यासन अर्थात् आत्मा पर गहन ध्यान, से युक्त होता है।

बोध प्रश्न 3

ध्यातव्य : क) उत्तर के लिए प्रदत्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गये उत्तर से अपने उत्तर की जांच कीजिए

1. उपनिषदों के मुख्य सिद्धान्त कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2. उपनिषदों में ज्ञान (विद्या) के दो विभाजन कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3. उपनिषदों की गहन चिकित्सा क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

5.8 सारांश

मानवीय स्वभाव मुख्य रूप से दैविक है, किन्तु समस्या यह है कि यह अपनी दिव्यता के प्रति जागरूक नहीं है। अहम् या अनुभवजन्य आत्मा ब्रह्म का एक भाग है और यह अपने वास्तविक स्वरूप में पुनः वापस जाना चाहता है। ब्रह्म पूर्णतः आनन्द, पूर्णतः व्याप्त एवं परम चेतना है। इसलिए अंहकार हमेशा सुख की चाह में रहता है और हर प्रकार से सर्वोपरि बने रहना चाहता है। इसकी अनुभूति के लिए अपने अन्तरतम अर्थात् आत्मा की ओर उन्मुख होने की अपेक्षा, मनुष्य बाध्य जगत में इस अनुभूति की आशा करता है और अपने समाज में यह बढ़ना चाहता है। परन्तु कोई भी बाहरी वस्तु उसको पूर्ण सुखी नहीं बनाती। इस प्रकार, उपनिषदों में सभी अशुभ, अज्ञान के रूप में समझे जा सकते हैं। जब अज्ञान दूर हो जाता है तब व्यक्ति अपने प्रयासों के लिए उचित दिशा प्राप्त करता है और अपने अवगुणों को छोड़ देता है। जबकि यह अज्ञानता के दौरान, अचेतन रूप से परम अद्वैत के अनुभव को खोजता है, जो उसे पूर्ण रूप से सुखी बनाये।

अन्त में हम कह सकते हैं कि स्वयं सभी प्रमुख उपनिषदों ने मानव के सही स्वभाव के वितरण की पूर्ण व्याख्या की है। सामान्य रूप से हम यह विश्वास करते हैं कि हममें एक आत्मा है अथवा यह कहना व्याघाती होगा कि मैं नहीं हूँ, मेरा अस्तित्व नहीं है। चार्वाक के समान भौतिकवादी भी, निस्सन्देह रूप से भौतिक तत्वों द्वारा निर्मित आत्मा के अस्तित्व को

स्वीकार करते हैं। किन्तु हम जानते हैं कि हम स्वयं बहुत दुखी सीमित और मरणशील मानव जीव है। हम संसार की बाहरी वस्तुओं में सुख को खोजते हैं। हर मानव जीव उद्देश्यहीन होकर सुख और सन्तुष्टि को खोजने में भटकता रहता है। हम अपना पूरा जीवन सभी ज्ञात और अज्ञात खतरों से सुरक्षा और रक्षा की खोज में गुजार देते हैं।

मानव जीव के सच्चे स्वभाव को प्रकट करने और समझने में यहां उपनिषदों का महान योगदान काम में आता हैं। उपनिषदों के अनुसार आत्मा सत्–चित आनन्द है जिसका अर्थ है कि अस्तित्व ज्ञान–परम आनन्द। इस प्रकार सभी मानव जीव जो कुछ बाहरी जगत में खोजते हैं, वास्तव में, यह उनके अन्दर ही रहता है। मानव जीव को स्वयं के सच्चे स्वभाव (शुद्ध रूप) का अनुभव उसको अपनी शाश्वत के प्रति जागरुक करता है। और सम्भवतः उसको अधिक सुरक्षा का अनुभव कराता है। इस अनुभूति के साथ जीवन भर चलने वाली आनन्द की खोज का पर्यवसान हो जाता है। बुद्ध जैसे दार्शनिकों के अनुसार इस संसार में जीवन दुःख का समानार्थी है। संसार में सुख है, इसको यह नहीं नकारते हैं किन्तु उनके अनुसार ये सभी सुख, दुःख से परिपूर्ण हैं। उपनिषद् इस दुःखपूर्ण जीवन से मुक्ति हेतु रूपरेखा प्रस्तुत करता है। ब्रह्मज्ञान दुःखपूर्ण जीवन का अन्त कर देता है। इस प्रकार यह ज्ञान सर्वोच्च है और यह सर्वोच्चता उपनिषदों द्वारा व्यक्त की गयी है।

बोध प्रश्न 4

ध्यातव्य : क) उत्तर के लिए प्रदत्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गये उत्तर से अपने उत्तर की जांच कीजिए

1. उपनिषदों का परम विषय क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

5.9 कुंजी शब्द

आत्म : संस्कृत शब्द आत्म का अर्थ है अन्तःजीव या आत्मा। आत्म ब्रह्म का अंश है, जिसमें यह समाहित हो जाता है या लय। आत्म ब्रह्म का तादात्म्य होता प्रतीत होता है।

ब्रह्म : ब्रह्म वैदिक संस्कृत शब्द है, और पॉल डायसन कहते हैं, "यह हिन्दू धर्म में सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त रचनात्मक सिद्धान्त के तौर पर अवधारणीकृत किया जाता है।" ब्रह्म वेदों का कुंजी अवधारणा है, और प्रारम्भिक उपनिषदों में इसकी विशद चर्चा है।

मोक्ष : मोक्ष, को विमोक्ष, विमुक्ति और मुक्ति भी कहा जाता है। मोक्ष पद हिन्दू, बौद्ध, जैन धर्म एवं दर्शन में प्रकाशन, प्रादुर्भाव, मुक्ति आदि विविध रूपों को संदर्भित करता है। उद्देश्य और परलोकविद्या के भाव में यह संसार (मृत्यु और पुनर्जन्म) से स्वतन्त्रता को संदर्भित करता है।

5.10 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

डायसन, पॉल. *द फिलॉसोफी आफ द उपनिषद्स.* एडिनबर्ग: टी एन्ड टी क्लार्क, 1908.

तत्यानन्द, स्वामी. *उपनिषदिक स्टोरी एन्ड दियर सिगनिफिकेन्स.* कलड़ी : श्री रामकृष्णन अद्वैत आश्रम, 1988.

दासगुप्ता, एस. एन. *हिस्ट्री ऑफ इन्डियन फिलॉसोफी,* वोल्यूम I टू IV. न्यू देल्ही: मोतीलाल बनारसी दास, 2008.

मोहन्ती, जे. एन. *एक्सप्लोरेशन एन फिलॉसोफी, इन्डियन फिलॉसोफी,* एडि. बीना गुप्ता. न्यू देल्ही : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001.

राधाकृष्णन्, एस. *प्रिंसिपल उपनिषद्.* लन्दन: जॉर्ज एलेन एण्ड अनविन लिमिटेड, 1953.

शर्मा, शुब्रा. *लाइफ इन द उपनिषद.* न्यू देल्ही: अभिनव पब्लिकेशन, 1985.

हिरियण्णा, एम. *आउटलाइन आफ इन्डियन फिलॉसोफी.* लन्दन: जॉर्ज एलेन एण्ड अनविन, 1932.

हिरियण्णा, एम. *द एसेन्शियल्स आफ इन्डियन फिलॉसोफी.* न्यू देल्ही: मोतीलाल बनारसी दास, 2009.

हिन्दी अध्ययन सामग्री

रानाडे, रामचन्द्र दत्तात्रेय. *उपनिषद् दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण.* अनुवाद– रामानन्द तिवारी. जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2011.

5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. उपनिषद् 900–300 ईसापूर्व की अवधि में लिखे गये दार्शनिक प्रकृति के ग्रन्थ हैं। यह वह समय था जब भारतीय समाज ने पारम्परिक वैदिक अनुष्ठानों पर सवाल उठाना आरम्भ कर दिया था। उपनिषद् वेद के भाग हैं। ये वेद के अन्तिम भाग होने के कारण ये वेद का निष्कर्ष भाग हैं (वेदस्य अन्तः) अतः उन्हें वेदान्त भी कहते हैं। ये न केवल निष्कर्ष भाग हैं, अपितु वेदों का समापन भी हैं, इसलिए 'वेद–शिरस्' (वेदों का मुकुट) भी कहलाते हैं।

2. औपनिषदिक साहित्य दार्शनिक प्राक्कल्पना के क्षेत्र में उच्चतम मानवीय बौद्धिकता के उत्पाद हैं। इसकी विशिष्टता परम सत् की समस्या के लिए समावेशी समाधान अथवा प्रकृति की समझ के साथ–साथ दुःख की प्राचीन समस्या का व्यावहारिक समाधान देने में है। वैज्ञानिक, आध्यात्मिक आदि मानवीय विकास के पहलुओं को समाहित करने के कारण इसकी वर्तमान प्रासंगिकता इसकी विचारों की सार्वभौमिकता को दर्शाती है।

उपनिषद् ब्रह्मविद् ऋषियों की शिक्षाओं के प्रतिनिधि हैं। उपनिषदों का लक्ष्य केवल बौद्धिक संतुष्टि न होकर, जीवन की परम समस्याओं का व्यावहारिक समाधान देना है और यह प्रतीत होता है कि मोक्ष की अवधारणा (चतुर्थ पुरुषार्थ) औपनिषदिक चिन्तन में अपने पूर्णतम रूप में प्रकट हुई है। धर्म, अर्थ, काम के वैदिक लक्ष्य से एक कदम आगे जाते हुए उपनिषदों ने जीवन की समस्त जिज्ञासाओं का परम लक्ष्य मोक्ष को सिद्ध किया है।

3. उपनिषदों की शिक्षा के दो पहलू– सैद्धान्तिक और व्यावहारिक हैं। सैद्धान्तिक पहलू तीन मुद्दों की चर्चा करता है–

1. मानव का सार (आत्म), 2. जगत का सार (ब्रह्म), 3. आत्म और ब्रह्म में सम्बन्ध।

बोध प्रश्न 2

1. प्रत्येक वेद के चार भाग हैं– संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्। संहिता में देव स्तुति के मन्त्र, ब्राह्मण में यज्ञ सम्बन्धी विचार, आरण्यक ध्यान उपासना से सम्बन्ध रखते हैं, और उपनिषद् दार्शनिक समस्याओं यथा– अस्तित्व की समस्या, इसका लक्ष्य एवं सत् का स्वरूप आदि की चर्चा करते हैं। संहिता से उपनिषद् तक के संक्रमण की तुलना कुहासा से किरण (सूर्यप्रकाश) तक के संक्रमण से की जा सकती है। मन्त्रों में जो निहितार्थ था वह दार्शनिक रूप में अभिधार्थ हो गया।

2. उपनिषद् सम्वादपरक हैं। प्रश्न–उत्तर, कहानियां–घटनाएं, उपमा, रूपक, दृष्टान्त आदि से विशेषित सम्वाद के माध्यम से प्रत्येक अवधारणा को विश्लेषित किया गया है। छान्दोग्य में पिता उद्दालक और पुत्र श्वेतकेतु, छान्दोग्य में सत्यकाम और उनकी माता जबला, बृहदारण्यक में प्रजापति और उनके पुत्र, कठ में यम और नचिकेता, छान्दोग्य में नारद और सनत्कुमार के मध्य सम्वाद दार्शनिक अवधारणाओं को विकसित करने के कुछ शास्त्रीय उदाहरण हैं। सम्वाद को दो तरह से देखा जा सकता है– एक तो प्रतिपक्षी के विचार में असंगति या आत्म–विरोध दिखाकर और दूसरा उच्च स्तर पर विरोध, को समाधान, लय या परिहार करना। उदाहरणार्थ, उद्दालक और नचिकेता के सम्वाद में, हम देखते हैं कि व्यवहार के अनुभवों से प्रारम्भ होता है। और व्यावहारिक स्तर या अनुभव की असंगतियों को सुलझाने के लिए पारमार्थिक स्तर पर जाते हैं। संक्षेप में, असंगतियों का परिहार आवश्यक है, फिर चाहे उच्चतर विचारों द्वारा या अपने समय के दार्शनिक के विचारों को मानकर। एक दूसरा तरीका कहानियां हैं। कहानी किसी अवधारणा को स्पष्टतः समझने में सहायक होती है और इसका उद्देश्य उस अवधारणा के नैतिक निहितार्थ को बताना होता है।

बोध प्रश्न 3

1. उपनिषद् की विषयवस्तु है–जगत् की उत्पत्ति, आत्म और शरीर की सत्ता, पुरुष और प्रकृति, ज्ञान, संसार का स्वरूप, बन्धन और मोक्ष इत्यादि। कुछ श्लोक मंत्ररूप में हैं, इनमें कहावतें, शिष्य–गुरु, पिता–पुत्र, देव और मनुष्य, पशु और मनुष्य के मध्य सम्वाद हैं। चर्चा के कुछ सिद्धान्त, संसार, कर्म, धर्म और मोक्ष हैं। ये तत्त्वमीमांसीय प्रकृति के सिद्धान्त हैं, जो भिन्न–भिन्न तरह से अधिकांश भारतीय धर्म और दर्शन का विषय रहा है। संसार पुनर्जन्म है, चाहे पशु, चाहे मनुष्य, चाहे देव रूप में, बस मृत्यु और जन्म के चक्र में।

कर्म का अच्छा या बुरा कोई भी परिणाम होता है। कर्म अगले जन्म की स्थितियों को निर्धारित करता है, जैसेकि हमारा वर्तमान जन्म पिछले जन्म के कर्मों से। इसमें कोई निर्णय या माफी नहीं है, बल्कि यह अपौरुषेय, स्वाभाविक और नित्य सांसारिक विधि है। जो अच्छा करेगा अच्छा जन्म पायेगा जो बुरा वो बुरा जन्म। धर्म का अर्थ है उचित व्यवहार या कर्तव्य, इसमें सामाजिक दायित्व की पूर्ति का विचार भी सम्मिलित है। प्रत्येक जाति का व्यक्ति कुछ निश्चित उत्तरदायित्व रखता है, जिसे उसका धर्म कहा जाता है। उदाहरणार्थ, क्षत्रिय का धर्म युद्ध में मृत्यु है, न कि बिस्तर पर मर जाना। अन्य शब्दों में, धर्म अपने कर्तव्यों का सर्वोत्तम ढंग से निर्वहन करना है। मोक्ष परम मुक्ति है। जन्म–मरण का अविरत चक्र बिना किसी परम लक्ष्य के है। स्थायी शान्ति इस चक्र में सम्भव नहीं क्योंकि बुरी परिस्थितियों में फिर जन्म लेना होगा। मोक्ष इस चक्र से मुक्ति है, इस अविरत घेरे से पलायन है।

2. ज्ञान या विद्या का परा और अपरा के रूप में विभाजन अनुभव की अवस्थाओं का क्रमशः उच्च और निम्न होना स्वीकारना है। इन दोनों विद्याओं के क्षेत्र क्रमशः पारमार्थिक एवं व्यावहारिक हैं।

3. स्वयं को जानने के लिए उपनिषदों में गहन विचार किया गया है । वस्तुनिष्ठ ढंग से यही सत् ब्रह्म और व्यक्तिनिष्ठ ढंग से आत्मा। आत्मा क्या है? आत्मा वह विषयी है जो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मृत्यु, पुनर्जन्म, मुक्ति में एक समान रहता है। उपनिषद् कहते हैं कि हमारी सत्ता का मूल शरीर या मन न होकर आत्मा है। आत्म सभी प्राणियों का सारतत्त्व है। यह ध्यान से प्रत्यक्षतः अनुभव होता है। इसका प्रकटन तब होता है जब हम अपने अस्तित्व के गहनतम स्तर पर होते हैं। उपनिषद् आत्मा को सत्ता, ज्ञाता, मनोवैज्ञानिक सत्ता आदि कहते हैं। आत्मा ब्रह्म और जीव को संदर्भित करती है। ब्रह्म ही परम सत्ता है और सभी उसी का प्रतिबिम्ब। संसार में व्यक्ति परम में लय होता है। कर्मफल का घालमेल नहीं हो सकता, क्योंकि जीवात्माएं भिन्न अन्तःकरण, इन्द्रियों, अहं आदि से सम्बद्ध होने के कारण अलग–अलग हैं। आत्मा दैवीय मन का प्रतिनिधित्व करता है और सभी जीवात्माएं परम में हैं।

जीवात्मा का अर्थ है सीमित आत्म, जो शरीर, इन्द्रिय, मन की उपाधियाला है। उपनिषदों का मत है कि एक ही आत्म विभिन्न जीवात्माओं में प्रकट है। ब्रह्म विश्व का अन्तर्भूत द्रव्य, अपरिवर्तनीय सत्ता, अस्तित्व का अबोधगम्य सार है। अमर, अपरिवर्तनीय बीज जो सबकुछ रचता है और स्थित करता है। यह सभी वर्णनों और बौद्धिक समझ से परे है। उपनिषदों की अन्तर्प्रज्ञा में आत्मा और ब्रह्म समान हैं या समान द्रव्य वाले हैं। जब कोई मोक्ष को उपलब्ध करता है, आत्मा अपने स्रोत ब्रह्म में वैसे ही लौट जाती है जैसे जलबूंद समुद्र में। यह भ्रम है कि हम विभक्त हैं, ऐक्य की अनुभूति से हम अंहकार, जन्म–मरण के चक्र और दुःख से मुक्त हो सकते हैं। मोक्ष का एक अर्थ है ब्रह्म में लय।

बोध प्रश्न 4

1. उपनिषदों का परम विषय मोक्ष है। यह जन्म–मरण के चक्र से और दुःखों से मुक्ति है। इसे अस्तित्व का परम लक्ष्य स्वीकारा जा सकता है। उपनिषदों में मोक्ष, जीवात्मा, मुक्त आत्मा के स्वरूप का वर्णन करते हैं। उपनिषदों के कई प्रसंगों के अनुसार, यह मुक्ति आत्म के सत्य ज्ञान से प्राप्त होता है। अतः, आत्म या आत्मा इच्छा और प्रेम का उच्चतम विषय है। मोक्ष प्राप्ति के अनेक उपाय हैं, ध्यान, अन्तःनिरीक्षण, यह ज्ञान

कि सभी रूपों, विषय–विषयी आदि के पीछे एक ही सत्ता है और हम उसी सम्पूर्ण के अंश हैं। उपनिषद् मानते हैं कि मनुष्य स्वभाव से जीव की तादात्म्यता, स्व निहित आत्म, और ब्रह्म के विषय में अज्ञानी है। ध्यान का एक लक्ष्य ब्रह्म से तादात्म्य की उपलब्धि है और यह इन्द्रिय–जगत से भ्रमात्मक तादात्म्य से उत्पन्न अज्ञान से मुक्ति है। शरीर, इन्द्रिय, मन, रूप–परिवर्तन, जन्म, मृत्यु, नाम रूप, क्रिया, विचार आदि उपाधियों से उत्पन्न अज्ञान के कारण जीव स्वयं को परमात्मा से भिन्न पाता है।

लेकिन जब ये भेद नष्ट हो जाते हैं, जीवन अद्वैत हो जाता है, जोकि परम सत्ता, परम कारण है। सत्य के ज्ञान से शरीर, नाम, रूप ब्रह्म में समाप्त हो जाते हैं। इस तादात्म्य के पश्चात कोई विशिष्ट चेतना नहीं रहती। जब तक द्वैत है, तब तक कोई गंध का अनुभव करता है, बोलता है, सोचता है, जानता है, और चेतना विषयी औए विषय में बंटी रहती है। जब पूर्ण एकत्व होता है, जब ज्ञान द्वारा द्वैत और अज्ञान नष्ट हो जाते हैं, तब देखने, सुनने, सोचने के साधन शेष नहीं रहते। यह पूर्ण एकात्म या एकत्व और अद्वैत की अवस्था है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 6 मोक्ष के विभिन्न उपागम[6]

रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 परिचय

6.2 अवलोकन

6.3 मूलभूत मुद्दों/अवधारणाओं पर विचार

6.4 दार्शनिक प्रतिउत्तर

6.5 सारांश

6.6 कुंजी शब्द

6.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में, आपसे मोक्ष से सम्बन्धित आवश्यक अवधारणाओं और इसके विभिन्न उपागमों को जानने की आशा की जाती है, जैसे कि :

- भारतीय दर्शन में 'मोक्ष' पद का अर्थ और इसका स्थान;
- भारतीय दर्शन में मोक्ष का प्रयोजनवादी आधार;
- कर्म का सिद्धांत और पुर्नजन्म;
- भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों के मोक्ष पर विभिन्न दृष्टिकोण;
- मोक्ष के परम्परागत मार्ग – ज्ञान, कर्म, भक्ति एवं राजयोग;
- भारतीय विचारधारा के नैतिक आधार के रूप में मोक्ष।
- समन्वय योग;

6.1 परिचय

भारतीय दार्शनिक परम्परा दो समानान्तर धाराओं वैदिक और अवैदिक से मिलकर बनती है जो क्रमशः आस्तिक और नास्तिक विचारधारा के रूप में भी जानी जाती है। यद्यपि उनमें तत्वमीमांसीय, ज्ञानमीमांसीय और नैतिक विषय पर अनेक मतभेद पाये जाते हैं। फिर भी, मूल्यमीमांसीय दृष्टि से ये सभी (चार्वाक को छोड़कर) मुक्ति, मोक्ष एवं स्वतंत्रता के विचार को लक्ष्य बनाते हैं। हम इसे मानव जीवन का परम शुभ, अन्तिम पुरूषार्थ (परम कर्तव्य) के रूप में मोक्ष कह सकते हैं।

[6] श्री अजय जायसवाल, विद्या वाचस्पति शोधक दर्शन केन्द्र जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, अनुवादक– डॉ. अफ्जल अहमद

व्युत्पत्ति की दृष्टि से, मोक्ष संस्कृत मूल 'मुच' धातु से बना है जिसका अर्थ 'मुक्त होना' है। उपनिषदों में यह 'मुच्यते' या विमुक्ते के रूप में पाया जाता है। यहां मुक्ति को कम से कम तीन विभिन्न प्रकार से समझा जा सकता है, जो कि एक दूसरे के पूरक हैं। सौंदर्य की दृष्टि से, मोक्ष का अर्थ दुःखों से मुक्ति है, ज्ञानमीमांसीय दृष्टि से यह अतींद्रिय अज्ञान (अविद्या) से मुक्ति है; और मृत्यु अथवा मनुष्य की अन्तिम नियति के सन्बन्ध में दैवी विद्याओं की दृष्टि अर्थात् परलोक विद्या की दृष्टि से यह कर्म–सिद्धान्त एवं पुर्नजन्म के चक्र से मुक्ति को सूचित करता है। भारतीय दार्शनिक शब्दावली में, मोक्ष के लिए दूसरी अवधारणायें (थोड़ी विभिन्नताओं के बावजूद) भी हैं – जैसे कि विमुक्ति (संदेह एवं विदेह), मुक्ति, अपवर्ग, निःश्रेयस, परमगति, ब्रह्मनुभव, निर्वाण, अर्हत् इत्यादि। विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों ने उनकी अलग–अलग प्रकार से व्याख्या की है, और कई प्रकार के उपागमों का निर्धारण किया है। इस इकाई में, हमारा उद्देश्य मोक्ष की इन व्याख्याओं और मोक्ष के उपागमों एवं साथ ही इसकी दार्शनिक पूर्वधारणाओं को समझना है।

6.2 अवलोकन

भारतीय दर्शन का एक प्रयोजनमूलक (सार्वभौमिक) सुखवादी आधार है। प्रत्येक व्यक्ति किसी प्रयोजन को लेकर कर्म के लिए प्रेरित होता है। बिना प्रयोजन के मूर्ख भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होगा। चाहे ये उत्कृष्ट या निकृष्ट या ईश्वर ही क्यों न हो, इन सभी का कोई न कोई प्रयोजन या लक्ष्य होता है। यह परम लक्ष्य सुख एव आनन्द है। निषेधात्मक रूप से यह दुःखों के अंत को इंगित करता है। चार्वाक सुख की सम्भावना को मानते है भले ही यह अपनी प्रकृति में क्षणिक और प्रायः दुःख मिश्रित हो।

दुःखों का अन्त एवं अनन्त सुख की सम्भावना जीवित रहते नहीं है। फिर भी, दूसरे सम्प्रदाय इस सम्भावना की स्थापना करते हैं। ब्रह्मवादी विचार निश्चित करता है कि जब ब्रह्म की अनुभूति होती है तब मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। ब्रह्म का स्वभाव स्वयं सत् चित एवं आनन्द है, जो चिरस्थायी चेतन सुख है। जबकि बौद्ध विचारधारा में, सभी दुखों एवं अज्ञान से रहित स्थिति को परम अवस्था के रूप में स्वीकार किया गया है। ये इस परम लक्ष्य को निर्वाण कहते हैं।

पुनः हम देख सकते हैं कि भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों का जीवन के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण है। अपने चिंतन का आरम्भ ये निराशावाद से करते हैं, फिर ये दिव्य आदर्श (चरम लक्ष्य) की प्राप्ति अर्थात् मोक्ष पर अन्ततः समाप्त करते हैं। जबकि भारतीय भौतिकवादी सम्प्रदाय, चार्वाक का लक्ष्य जीवन से अधिक से अधिक सुख की प्राप्ति करना है, और उनके लिए काम ही मोक्ष (परम लक्ष्य) है। जबकि ये पुर्नजन्म को नहीं मानते हैं। अतः ये एक अहंवादी या व्यक्तिपरक सुखवाद का प्रतिपादिन करते हैं। इस दृष्टिकोण का लक्ष्य व्यक्तिगत सुखों की अधिक से अधिक प्राप्ति है। यह नैतिकता को खतरे में डालता है; जबकि दूसरे भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय मोक्ष को व्यक्ति केन्द्रित सुखवाद के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं लेकिन एक उपयोगितावादी सुखवाद के रूप में करते हैं जहां कर्म–सिद्धांत एवं नैतिकता के लिए स्थान है। फिर भी, मानव जीवन के परम लक्ष्य के स्तर के रूप में मोक्ष की सराहना होती है जो कि, भारतीय दर्शन एवं नैतिकता के प्रयोजन मूलक आधार के रूप कार्य करता है। भारतीय दर्शन में (चार्वाक को छोड़कर) यह मोक्ष का प्रयोजन (अर्थात् परम लक्ष्य) या तो सकारात्मक रूप से, जहां यह परम आनन्द (सुख) का

द्योतक है या फिर निषेधात्मक रूप से, सभी दुखों का अन्त सार्यमौखिक रूप से अभिस्वीकृत है। अतः मोक्ष की अवधारणा का आधार आध्यात्मिक प्रयोजनवादी एवं सुखवादी है।

मोक्ष की अवधारणा से सम्बन्धित दूसरी मुख्य पूर्वधारणा कर्म–सिद्धांत है। पुनः परलोक विद्या के सन्दर्भ में, मोक्ष का अर्थ कर्म–सिद्धांत एवं पुर्नजन्म के चक्र से मुक्ति है। यह जीवात्मा पर कर्मों के संस्कार को पूर्ण रूप से नष्ट करने को महत्व प्रदान करता है। इसके आगे, कर्म–सिद्धांत, संक्षेप में, यह कारणता को सिद्धांत को मनुष्य के कर्म एवं नैतिकता के क्षेत्र पर लागू होता है। अच्छे कर्म का अच्छा फल होता है और बुरे कर्म का बुरा फल (परिणाम) होता है।

कर्म के तीन प्रकार होते हैं –

1. संचित कर्म – कर्म जो संचित है एवं उनका फल अभी नहीं मिला है।
2. प्रारब्ध कर्म – पूर्व के कर्म, जिनका फल मिलना आरम्भ हो गया हैं
3. संचीयमान कर्म – वर्तमान के कर्म जिनका फल या तो अभी मिलेगा या फिर भविष्य में।

ये कर्म क्षणिक सुख उत्पन्न कर सकते है। किन्तु ये प्रायः सुख एवं दुःख से मिश्रित होते हैं। पुनः तीन प्रकार के दुख होते हैं –

1. आध्यात्मिक – किसी के द्वारा उत्पन्न किया गया भौतिक एवं मानसिक दुख
2. आधिभौतिक – दूसरे जीवों द्वारा दिया गया दुःख
3. आधिदैविक – प्राकृतिक शक्ति द्वारा दिया गया दुःख जैसे कि भूकम्प जनित आपदा।

एक व्यक्ति पुर्नजन्म एवं कर्म की श्रृंखला में बंधा हुआ होता है और व्यापक रूप से दुःख भोगता है। भारतीय दर्शन के सभी सम्प्रदाय, आस्तिक एवं नास्तिक दोनों, चार्वाक को छोड़कर, सर्वसम्मति से इस विचार पर सहमत हैं कि मानव दुःख का कारण कर्म–सिद्धांत है और मोक्ष इस दुःख का उचित प्रतिकार है।

बोध प्रश्न 1

ध्यातव्य : क) उत्तर के लिए प्रदत्त स्थान का प्रयोग करें।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की जांच करें।

1. 'मोक्ष' पद का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

.....

.....

2. मोक्ष की अवधारणा के दार्शनिक आधार को बताइये।

.....

.....

.....

.....

.....

6.3 मूलभूत मुद्दों/अवधारणाओं पर विचार

यदि हम एक बार मोक्ष के प्रयोजनमूलक एवं सुखवादी आधार को समझ लें तो दर्शन के विद्यार्थी के रूप में अगली महत्वपूर्ण चुनौती, विभिन्न भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों द्वारा प्रतिपादित मोक्ष की अवधारणाओं एवं इसकी सहकारी अवधारणाओं की विभिन्न व्याख्याओं को समझना है, और तत्पश्चात् मोक्ष के प्रधान उपागमों को प्रदर्शित करने वाली एक रूपरेखा तैयार करनी है। इस भाग में, हम वैदिक और अवैदिक दो मुख्य शीर्षकों के अन्तर्गत् इन मुख्य दार्शनिक मुद्दों को समाविष्ट करने का प्रयास करेंगे ये उपागम इस प्रकार हैं –

क) वैदिक उपागम

ज्ञान के शाश्वत एवं दिव्य स्रोत वेद के चार भाग हैं – मंत्र, ब्राह्मण, आरण्यक, और उपनिषद्। साधारण रूप से, यह प्रार्थना के प्रकृतिवादी स्रोतों के साथ शुरू होते हैं और उपनिषद् के दार्शनिक चिन्ह में इनका अवसान हो जाता है। सम्पूर्ण वेदों में मोक्ष की अवधारणा अस्त–व्यस्त रूप में है, जबकि इसके दार्शनिक आधार केवल उपनिषदों में पाये गये हैं। उपनिषद अमूर्त ज्ञान से परिपूर्ण हैं और जनसाधारण की समझ से बाहर हैं। इस प्रकार, छः दर्शन एवं भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय के रूप में वेद के छः उपांग हैं। ये विभिन्न सन्दर्भों में वेद के सर्वोत्कृष्ट सार भाषा को प्रस्तुत करते हैं। फिर भी, उनमें से सभी, मोक्ष के वैदिक आदर्श की ओर ही संकेत करते हैं। आइये उनके विचारो को समझें–

1. न्याय वैशेषिक

न्याय दर्शन के मुख्य ग्रन्थ ऋषि गौतम के *न्यायसूत्र* में निःश्रेयस एवं अपवर्ग को मोक्ष का आदर्श कहा गया है। अपने प्रथम सूत्र में ग्रन्थ यह दावा करता है कि न्याय द्वारा प्रतिपादित सोलह पदार्थों के ज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति हो सकती है। अतः दार्शनिक अज्ञान बन्धन का कारण है। अज्ञान से बुरे कर्म होते हैं जो दुख और पुर्नजन्म के परिणाम में बदल जाते हैं। इस क्रम के विपरीत *सम्यक्* ज्ञान (तत्वज्ञान) से अपवर्ग की प्राप्ति होती है।

वैशेषिक दर्शन का मुख्य ग्रन्थ ऋषि कणाद का *वैशेषिक सूत्र* भी निःश्रेयस को मोक्ष के रूप में स्वीकार करता है, जहां *सम्यक्* ज्ञान के सदगुण द्वारा सभी दुःखों का अन्त हो जाता है। कणाद छः और पदार्थों को जोड़ते हैं जिनको जानना है, जो इस *सम्यक्* ज्ञान के विषय है। इसके पश्चात् कणाद ने अभ्युदय एवं निःश्रेयस की धारणाओं में निःश्रेयस को बढ़ाया, उसे यह धर्म के रूप में व्याख्यायित करते हैं। अभ्युदय भौतिक

और सामाजिक प्रगति है; और निःश्रेयस आध्यात्मिक वृद्धि या मोक्ष है। यहां दो बिन्दु उचित क्रम से सम्बन्धित हैं यह सुनिश्चित वैदिक मत है कि बिना उचित भौतिक और सामाजिक उत्थान के मोक्ष के बारे में सोचना व्यर्थ है। दूसरा सम्बन्ध इसकी सीमा से है कि किसी को भौतिक उन्नति में ही पूर्णतः संलग्न नहीं होना चाहिए जिसमें अनैतिक साधन भी हो सकते हैं। अनैतिक या अत्याधिक भौतिक सम्पन्नता में निःश्रेयस की प्राप्ति नहीं होगी। अतः दोनों एक दूसरे के सम्पूरक एवं अनुपूरक हैं और दोनों मिलकर धर्म का निर्माण करते हैं।

2. सांख्य–योग

ऋषि कपिल का सांख्य–सूत्र, मोक्ष को निषेधात्मक रूप में मानते हुए त्रिविध दुःखों (तीन प्रकार के दुःख जो ऊपर बताये गये) के अन्त आध्यात्मिक का वर्णन करता है। अन्य साधने केवल अस्थायी रूप से दुःखों को कम कर सकते है। केवल मोक्ष ही तीन प्रकार के दुःखों से स्थायी रूप से मुक्ति प्रदान कर सकता है। पुनः बन्धन का मूल कारण अज्ञान है। यहां, अज्ञान का निरूपण भ्रम के रूप में किया गया है जिसमें चेतन पुरुष जड़ प्रकृति से स्वयं को पृथक नही कर पाता। जब पुरुष प्रकृति से पूर्णतः अलग हो जाता है तब मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार, इसके कैवल्य (केवल भाव में) भी कहा जाता हैं

पंतजलि का *योगसूत्र* मोक्ष प्राप्ति के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर बल देता है। इसी के अनुरूप यह मन एवं शरीर को प्रशिक्षित करने की एक पद्धति प्रदान करता है। योग बाह्य विषयों की ओर उन्मुक्त तथा बिखरी हुई मानसिक अवस्थाओं का निरूपण चितवृत्ति के रूप में करता है जो कि पांच प्रकार की होती है। जब योग के अष्टांग मार्ग द्वारा ये नियंत्रित हो जाती है, तब यह समाधि या परम योग तक ले जाती है। इस प्रकार, योग चित की वृत्तियों का निरोध है, और इसकी शुद्ध अवस्था में कैवल्य की प्राप्ति होती है।

3. मीमांसा

कुमारिल और प्रभाकर मीमांसा के दो महान चिन्तक थे जैसा कि ऊपर चर्चा हुई कि वेद के चार भाग हैं मंत्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। मीमांसा वेद के कर्मकांड सम्बन्धी पक्ष (मुख्यतः मंत्र एवं ब्रह्मण) पर केन्द्रित है। *जैमिनि सूत्र* में बताया गया है कि वैदिक यज्ञानुष्ठान का पालन करना धर्म का लक्षण है। वैदिक अनुष्ठान स्वर्गीय सुख प्रदान करते हैं जिसे मोक्ष का दर्जा दिया गया है।

4. वेदान्त

वेदान्त की कम से कम तीन सावद्ध व्याख्यायें है। पहली, यह सर्वप्रथम इसका आशय उपनिषदों की शिक्षा से है जो वेदों के अन्त में पायी जाती है और इसलिए यह वेदान्त कहलाते हैं। दूसरी, वैदिक शिक्षा का सार पाया जाता है इसकी ये वेदान्त कहलाते हैं। तीसरा उपनिषद की शिक्षायें ज्ञात की चरम अवस्था होने के नाते वेदान्त कहलाते हैं।

इसके अतिरिक्त, वेदान्त के तीन मुख्य स्रोत हैं, जिनके नाम हैं उपनिषद, *ब्रह्मसूत्र* और भगवद *गीता,* जिसे प्रस्थान त्रयी कहा जाता है। यद्यपि, प्रस्थान त्रयी की बहुत–सी व्याख्यायें हैं, फिर भी ये दो शीर्षक अनीश्वरवादी और ईश्वरवादी में वर्गीकृत की जा सकती हैं। पहली का शंकर के द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया है, और बाद का रामानुज, मध्व,

वल्लभ, निम्बार्क इत्यादि ने। मोक्ष की अवधारणा पर शंकर और रामानुज के बीच व्यापक रूप से वाद–विवाद हुआ है। संक्षेप में, उनके विचार निम्न प्रकार से हैं –

शंकर

शंकर ने अद्वैत के सिद्धांत का प्रतिपादन किया, संक्षेप में जो बताती है कि परम सत् विषय एवं विषय से रहित अवस्था है जिसमें आत्मा और ब्रह्म का स्वयं पाया जाता है। उसका ध्येय वाक्य था –

ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः अर्थात् ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, जगत् असत् (क्षीणक) है, क्योंकि निरन्तर परिवर्तनशील है और परमार्थिक सता स्तर पर जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। इस जीव मिथ्या होने की अनुभूति और इसका पूर्णतः परम ब्रह्म में मिल जाना ही मोक्ष की अनुभूति है। यह मुक्ति सशरीर (सदेह) अथवा मृत्यु के पश्चात् (विदेह) के रूप में हो सकती है। यह अनुभूति मूलभूत रूप से आध्यात्मिक ज्ञान का परिणाम है, जहां ज्ञाता और ज्ञेय का विलयन हो जाता है। इस प्रकार, मोक्ष की अवस्था किसी भी अनुभवजन्य गुण और विशिष्टताओं से रहित है। वास्तविक रूप से, इसका स्वरूप सत् चित् आनन्द है।

रामानुज

रामानुज और उनके समान विचारक जैसे मध्व और वल्लभ का मत है कि जगत् की वास्तविकता और ब्रह्म और जीव में भेद को कुछ दशा में स्वीकार करना होगा अन्यथा बन्धन और मुक्ति का प्रश्न व्यर्थ हो जाता है। इस प्रकार रामानुज विशिष्टाद्वैत (विशिष्ट अद्वैत) की स्थापना करते हैं और उनकी मोक्ष की अवधारणा भगवान विष्णु (ब्रह्म का सगुण रूप) के साथ शाश्वत संगति है। पूर्ण निर्गुण ब्रह्म दार्शनिक रूप से अकल्पनीय है। आगे मोक्ष में, कई प्रकार की अवस्थायें हैं, फिर भी, जीव ब्रह्म या विष्णु के साथ नहीं हो पाता है। दोनों के बीच आवश्यक रूप से अन्तर रहता है, जिससे शाश्वत दैवी लीला सम्भव हो पाती है।

ख) अवैदिक उपागम

भारतीय दर्शन के अवैदिक (नास्तिक) सम्प्रदायों ने भी मोक्ष की अवधारणा का वर्णन किया है। बौद्ध दर्शन एवं जैन दर्शन के विचार संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किये जा सकते हैं –

1. बौद्ध दर्शन

सार रूप में, बौद्ध दर्शन को बुद्ध द्वारा उपदिष्ट चार आर्य सत्यों में निरूपित किया जा सकता है –

1) दुःख –जगत् में दुःख है।

2) दुःख समुदाय – दुःख का कारण है।

3) दुःख निरोध – सभी दुःखों का निरोध सम्भव है निर्वाण की अवस्था।

4) दुःख निरोध मार्ग – दुःख के निरोध का मार्ग है (जब कारण नष्ट हो जाते हैं)

हम देख सकते हैं कि बौद्ध दर्शन का आरम्भ निराशावाद से होता है किन्तु इसका समापन निर्वाण की आशा में होता है। निर्वाण की अवस्था का निषेधात्मक रूप से, सभी अनुभूतियों की समाप्ति अथवा विराम के रूप में निरूपित किया गया है। यह वैयक्तिक आत्म का पूर्णतः

अंत (नैरात्म्यवाद) है। यद्यपि बुद्ध ने निर्वाण से सम्बधित कोई सकारात्मक वर्णन प्रस्तुत नहीं किया, वे इस पर मौन रहे, फिर भी बौद्ध दर्शन के बाद के चरण (विशेष रूप से विज्ञानवाद) में, रहस्यवादी चेतना के सम्बन्ध में हम कुछ सकारात्मक वर्णन भी पाते हैं।

2. जैन दर्शन

जैन दर्शन का विचार यह है कि जीव कर्म बन्धन के कारण दुःख में रहता है। आत्मा का अनन्त सुख का आन्तरिक स्वभाव *असम्यक्* ज्ञान और *असम्यक्* कर्म के द्वारा ढंक जाता है। इस कारण ये, मोक्ष ऐसी अवस्था है जहां सारे कर्म नष्ट हो पाते है और आत्मा अपना मूल अवस्था में प्रतिष्ठित हो जाती है। इस अवस्था को 'जिनत्व अथवा 'अर्हत' कहा जाता है। जैन ग्रन्थों में मुक्ति के तीन मार्गों का उल्लेख किया गया है। जो इस प्रकार है –

1) सम्यक् दर्शन

2) सम्यक् ज्ञान

3) सम्यक् चरित्र

मोक्ष के उपागम

भारतीय दर्शन के विभिन्न वैदिक एवं अवैदिक सम्प्रदायों द्वारा मोक्ष की विभिन्न व्याख्याओं की रूपरेखा प्रस्तुत करने के पश्चात् अब हम मोक्ष के उपागमों के वर्गीकरण का प्रयास कर सकते हैं। साधारण रूप से, मोक्ष के चार मार्ग हैं जो इस प्रकार हैं –

1. कर्म–मार्ग

यह सम्यक् कर्म का मार्ग है जो साधक (मुमुक्ष) के लिए मोक्ष की सम्भावनाओं के द्वार खोलता है। मीमांसक वैदिक अनुष्ठान (यज्ञ) पर आधारित कर्म मार्ग के कट्टर समर्थक थे। मीमांसकों के अतिरिक्त, सम्यक् कर्म का मार्ग *गीता*, बौद्ध दर्शन एवं जैन दर्शन के विचारों में भी महत्वपूर्ण रूप से स्वीकारा गया है। *गीता* के लिए, सम्यक् कर्म का अर्थ है फल की इच्छा से रहित कर्म (निष्कामकर्म)। फल की इच्छा व्यक्ति को बन्धन की ओर ले जाती है। फल की इच्छा का परित्याग परम शान्ति (मोक्ष) की ओर ले जाता है। अतः *गीता* कहती है कि कर्मयोगी को कर्म के परिणामों से स्वयं को मुक्त कर लेना चाहिए और कर्म के लिए कर्म करना चाहिए।

2. भक्ति मार्ग

यह भक्ति का मार्ग है जो परोपकारी एवं दयालु ईश्वर के रूप में उसे परम सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित करता है और अत्यधिक प्रेम के साथ उस परम सत्ता के प्रति समर्पण करता है जो मोक्ष प्रदान करने में समर्थ है। भक्ति मार्ग में पूर्ण समर्पण, कर्त्तव्याभिमान शून्य कर्म (निष्काम कर्म), सेवा भाव और ईश्वर आराधना सम्मिलित है। वैष्णव पंथ भक्ति मार्ग का आदिप्रवर्तन है।

3. ज्ञान मार्ग

यह ज्ञान का मार्ग है यहां ज्ञान का तात्पर्य परमात्मा और जीवात्मा के ऐक्य का आध्यात्मिक ज्ञान से है। यहां यह विशेष ज्ञान मुक्ति के कारण का माध्यम बनता है। शंकर और सांख्य ज्ञान मार्ग के प्रमुख समर्थक हैं।

4. राजयोग

यह ध्यान का मार्ग है जिसमें चित्त और उसकी विभिन्न वृत्तियों एवं अस्थिरताओं को नियंत्रित किया जाता है और जिनका अन्त में, समाधि की परम अवस्था में विलय हो जाती है। योग दर्शन का अष्टांग मार्ग ध्यान मार्ग का एक प्रमुख प्रस्थान है। इसके अतिरिक्त, हम बौद्ध एवं जैन दर्शन में भी मोक्ष की प्राप्ति के लिए ध्यान की अत्याधिक महत्ता को पाते हैं। आधुनिक भारतीय युग में, विवेकानन्द और महर्षि रमण जैसे ऋषियों द्वारा इसकी पुर्नव्याख्या की गई है।

6.4 दार्शनिक प्रतिउत्तर

मोक्ष की अवधारणा सम्बन्ध में, दार्शनिक प्रश्नों एवं उसके समाधनों को पूर्णरूप से तीन भिन्न वर्गों से समझा जा सकता है। पहला मोक्ष की सम्भावना से सम्बन्धित है। दुःख और दुःखमिश्रित सुख सामान्य मानव त्रासदी है जिसका अन्त मृत्यु होने पर होता है। विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या दुःखों के पूर्ण अन्त एवं सकारात्मक रूप से प्रचुर आनन्द के साथ, अमरता की कोई सम्भावना है। दूसरे शब्दों में, क्या मोक्ष की कोई सम्भावना है? चार्वाक का उत्तर है कि मोक्ष की कोई सम्भावना नहीं है। स्थायी रूप से दुःखों का अन्त एवं स्थायी आनन्द की प्राप्ति एक भ्रम है। दूसरी ओर, चार्वाक इतर दार्शनिक (वैदिक एवं अवैदिक) या तो सकारात्मक रूप में या निषेधात्मक रूप में, मोक्ष की सम्भावना को स्वीकार करते हैं।

दूसरी समस्या मोक्ष के स्वरूप और उससे सम्बन्धित विभिन्न व्याख्याओं से है। निर्विवाद रूप से, यह कर्म के सिद्धान्त एवं पुर्नजन्म के चक्र से मुक्ति के रूप में स्थापित किया गया है। जबकि दार्शनिक सम्प्रदाय मोक्ष के स्वरूप, ईश्वर की भूमिका और मोक्ष के लिए प्रयुक्त शब्दावली के सम्बन्ध में भिन्नता रखते हैं।

तीसरी, मोक्ष के उपागम एवं साधनों को समझना एक मुख्य चुनौती है। मोक्ष उपागम के सामान्य चार प्रकारों की हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। उनमें से प्रत्येक मानव की मनोवृत्ति के विशेष पक्ष पर महत्व देता है। फिर भी, यदि किसी को विभिन्न उपागमों के समन्वय की आवश्यकता हो, तो इस प्रकार के प्रस्ताव को समन्वय योग का नाम दिया जा सकता है जिसको *भगवद् गीता* द्वारा प्रतिपादित किया गया है। समन्वय योग उचित ज्ञान, उचित कर्म और उचित भक्ति को महत्व देता है – मोक्ष प्राप्ति के लिए ध्यान के साथ–साथ ये सभी महत्वपूर्ण हैं।

बोध प्रश्न 2

ध्यातव्य : क) उत्तर के लिए प्रदत्त स्थान का प्रयोग करें।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की जांच करे

1. वैदिक सम्प्रदायों के अनुसार मोक्ष की अवधारणा को संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. मोक्ष के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण क्या हो सकते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

6.5 सारांश

सारांश में, मोक्ष की अवधारणा एवं उपागमों पर उपरोक्त चर्चा से हम कुछ निम्न दार्शनिक बिन्दु निकाल सकते हैं –

1. मोक्ष के विचार का एक प्रयोजनवादी एवं सुखवादी आधार है– एक प्रयोजनवादी सुखवादी मानव मनोवृत्ति का लक्ष्य अधिकतम सुख एवं न्यूनतम दुःख है।

2. विचारणीय प्रश्न यह है – क्या मोक्ष की कोई ऐसी सम्भावना है अर्थात् जहां दुःखों का स्थायी अन्त हो अथवा शाश्वत सुखों की प्राप्ति हो? इसका उत्तर दो प्रकार से है – चार्वाक मोक्ष की सम्भावना को अस्वीकार करता है और चार्वाक इतर (वैदिक एवं अवैदिक सम्प्रदाय) मोक्ष की इस प्रकार की स्थिति की सम्भावना को स्वीकार करते हैं।

3. मोक्ष तथा इसके पदों जैसे मुक्ति विमुक्ति, कैवल्य, निर्वाण, अपवर्ग इत्यादि अनेक व्याख्यायें विद्यमान है, उनमें से सभी मोक्ष का या तो सकारात्मक रूप में या निषेधात्मक रूप से वर्णन करती है।

4. अन्त में, सामान्य रूप से मोक्ष के चार मार्ग एवं उपागम हैं – कर्म, भक्ति, ज्ञान और राजयोग। उन सभी ने मोक्ष के विभिन्न कारकों की महत्ता पर बल दिया है। उनमे से अनेक चिंतक यह स्वीकार करते हैं कि ये सभी एक दूसरे का पूरक एवं अनुपूरक है, और इस प्रकार, मोक्ष के समन्वयवादी उपागम को प्रस्तुत करते है जो कि समन्वय योग है।

6.6 कुंजी शब्द

अभ्युदय : सांसरिक उत्थान।

आस्तिक : वेद की प्रमाणिकता में विश्वास, इसके विपरीत नास्तिक वेद की प्रमाणीगत में।

अविद्या : अतीन्द्रय अज्ञान अथवा बन्धन का मूल कारण।

भक्ति योग : भक्ति के द्वारा मोक्ष का मार्ग।

चित्त वृत्ति : योग सूत्र में वर्णित पांच चित्त वृत्तियां।

सुखवाद : नैतिक दृष्टिकोण जिसका लक्ष्य अधिकतम सुख और न्यूनतम दुख है।

ज्ञान योग : ज्ञान द्वारा मोक्ष का मार्ग।

कर्म योग : उचित कर्मों द्वारा मोक्ष का मार्ग।

मोक्ष : मनोवैज्ञानिक ज्ञानमीमासीय, पारलौकिक रूप से दुख, तत्वमीमासीय अज्ञान और कर्म के चक्र एवं पुर्नजन्म से मुक्ति की अवस्था।

निःश्रेयस : परम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष।

निर्गुण ब्रह्म : परम सत्ता के व्यक्तित्व शून्य और निराकार पक्ष को सूचित करता है। ब्रह्मा के सृजनात्मक पहलू के साथ इसकी परस्पर तुलना की जा सकती है जो कि सगुण ब्रह्म है।

पुरूषार्थ : मानव जीवन के चार लक्ष्य – धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष।

सदेह मुक्ति : शरीर के साथ मोक्ष की अवस्था, इसके विपरीत, विदेह मुक्ति मृत्यु के पश्चात मोक्ष।

समन्वय योग : यह ज्ञान, भक्ति, कर्म और राज योग का समन्वय है।

प्रयोजनवाद : यह दृष्टिकोण कि हर एक वस्तु प्रयोजन प्रेरित होती है।

वेदान्त : प्रस्थानवादी पर आधारित शिक्षा का निरूपण करता है, यह तीन मुख्य स्रोत (ग्रन्थ) मुख्यतः *उपनिषद, भगवद गीता* एवं *ब्रह्मसूत्र* है।

6.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

कुहन, हरमन. *कर्म द मैकेनिज्मः क्रियेट योर ओन फेट.* पुन्सटोर्फ, जर्मनी : फ्रासविंड पब्लिशिंग, 2001.

गविन, फलोड. *द मीनिग एंड कॉन्टेक्ट आफ द पुरुषार्थ.* इन जुलियस लिपनर (एडि) *द फ्रूटस आफ अवर डीजाइरिंग,* 1996.

पॉटर, कार्ल एच. *प्रिसपॉजीशन ऑफ इण्डियाज फिलॉसोफीज.* प्रेन्टिस–हाल ऑफ इण्डिया (प्राइवेट) लि., 1965.

भगवद् गीता (सेलिस्टियल सांग). सर इडविन अरनोल्ड. पेगुइंन रॅंडम हाउस साउथ, 2018.

दया कृष्ण. "थ्री मिथ्स अबाउट इण्डियन फिलॉसोफी." इन इण्डियन फिलॉसोफीः *अ काउन्टर पर्स्पेक्टिव,* 3–15. देल्हीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1991.

दया कृष्ण. "थ्री कन्सेप्शन ऑफ इण्डियन फिलॉसोफी." इन *इण्डियन फिलॉसोफीः अ काउन्टर पर्सपेक्टिव,* 16–34. देल्हीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1991.

मतिलाल, बिमल कृष्ण. *माइन्ड, लॅंग्वेज एण्ड वर्ल्ड,* एडिटिड बाई जॉनार्डन गनेरी एण्ड हीरामन तिवारी. न्यू यॉर्कः स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यू यॉर्क प्रेस, 1998.

राधाकृष्णन्, एस. *इण्डियन फिलॉसफी,* सैकेण्ड एडिशन. जार्ज एलिन एन्ड अनविबन, 1931.

राधाकृष्णन, एस.. *प्रिसंपल उपनिषद.* न्यूयार्क : हार्पर कोलिंग्स, 1963.

शर्मा, सी. डी. *ए क्रिटिकल सर्वे आफ इण्डियन फिलॉसफी.* देल्हीः मोतीलाल बनारसीदास, 1990.

शर्मा, अरविन्द. "द पुरुषार्थासः एन अक्जियोलोजिकल एक्सप्लोरेशन्स ऑफ हिन्दुइज्म." *द जर्नल ऑफ रिलिजियस एथिक्स,* 27/2 (1999). एसेस्ड 18/08/2020 https://www.jstor.org/stable/40018229?seq=1

शर्मा अरविन्द. "द पुरुषार्थासः अ स्टडी इन हिन्दु अक्जियोलोजी." ईस्ट लांसिंग मिचः एशियन स्टडीज सेन्टर, मिशिगन स्टेट यूनियर्सिटी, 1982.

हिरियण्णा, एम. *पॉपुलर एस्सेज इन इण्डियन फिलॉसोफी.* मैसूरः काव्यालय पब्लिसर्श, 1952.

हिन्दी अध्ययन सामग्री

चट्टोपाध्याय, देवीप्रसाद. *भारतीय दर्शन में क्या जीवंत है और क्या मृत.* अनुवाद– कन्हैया. नई दिल्लीः पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 2007.

दयाकृष्ण. *भारतीय दर्शनः एक नई दृष्टि.* जयपुरः रावत पब्लिकेशनस, 2000.

दया कृष्ण. *भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिक परम्पराएं.* सम्पादक– योगेश गुप्ता. जयपुरः राजस्थान विश्वविद्यालय एवं लिटरेरी सर्किल, 2006.

दासगुप्त, सुरेन्द्र नाथ. *भारतीय दर्शन का इतिहास* (पांच भाग). अनुवाद– कलानाथ शास्त्री एवं सुधीर कुमार. जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1977.

राधाकृष्णन, एस. *भारतीय दर्शन* (दो खण्ड). अनुवाद– नन्दकिशोर गोभिल. दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्स, 2015.

शर्मा, चन्द्रधर. *भारतीय दर्शन का आलोचनात्मक सर्वेक्षण.* दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 2005.

हिरियण्णा, एम. *भारतीय दर्शन की रूपरेखा.* हिन्दी अनुवाद– गोवर्धन भट्ट आदि दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 1969.

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. मोक्ष पद मूल रूप से मुच् या मुच्यते शब्द से निकला है जिसका अर्थ मुक्त या स्वतंत्र होना है। पहली बार यह उपनिषदों में आया है उदाहरण हेतु सा विद्या या विमुक्ते (ज्ञान जो मुक्त कराये)। ज्ञानमीमांसीय रूप इसका अर्थ अज्ञान से मुक्ति है और परलोक विद्या के रूप में, इसका अर्थ कर्म नियम और जन्म मरण के चक्र से मुक्त होना है। भारतीय दर्शन में अन्य कुछ ऐसे भी समान पद है जो मोक्ष की अवस्था को सूचित करते है जैसे कि मुक्ति, विमुक्ति, अपवर्ग, निःश्रेयस, निर्वाण, परमानन्द इत्यादि।

2. मोक्ष की अवधारणा का प्रयोजनवादी और सुखवादी आधार है। प्रयोजनवादी से तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वस्तु प्रयोजन प्रेरित है। इसके आगे, कोई प्रश्न पूछ सकता है कि यह परम लक्ष्य (परम शुभ) क्या हो सकता है? भारतीय ऋषियों ने आनन्द के सन्दर्भ में इसको उत्तर देने का प्रयास किया है। मोक्ष के सम्बन्ध में विचारणीय प्रश्न

यह है कि क्या स्थायी सुख (आनन्द) या दुखों के स्थायी अन्त की कोई सम्भावना है? भारतीय दर्शन के दार्शनिक सम्प्रदायों (चार्वाक को छोड़कर) ने इस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर दिया है और इस प्रकार हमारे पास मोक्ष की विभिन्न अवधारणायें एवं उपागम हैं।

बोध प्रश्न 2

1. वैदिक दार्शनिक सम्प्रदाय अस्तिक दर्शन के रूप में जाने जाते हैं जिनकी संख्या छः है – न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत। ये सभी न्यूनाधिक रूप से मोक्ष की अवस्था पर विचार करते हैं। न्याय–वैशेषिक की दृष्टि से यह चौथे एवं अन्तिम पुरुषार्थ (मानव जीवन का लक्ष्य) के रूप में पहचाना गया है। उनके लिए यह निश्चित तत्व–मीमांसीय पदार्थों के सम्यक् ज्ञान (प्रमा) पर निर्भर करता है। सांख्य के लिए, मोक्ष कैवल्य की स्थिति है अर्थात् विश्व की प्रकृति (अ) चेतना के तत्वों से पुरूष (चेतन) का केवल भाव में होना। मोक्ष के सम्बन्ध में योग का दृष्टिकोण भी केवल्य के रूप में पुरूष की अनुभूति पर केन्द्रित है, किन्तु यह कठोर नैतिक नियमों के पालन के साथ–साथ यह मन और शरीर के समय के कठोर अनुशासन की अपेक्षा रखता है। मीमांसकों के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति धर्म से होती है जो कि वैदिक कर्मकांडों का अनुकरण है। उनके लिए यज्ञ के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति, धर्म की कसोटी होनी चाहिए। वेदान्त के दार्शनिकों जैसे शंकर के लिए ब्रह्म और आत्मा के अद्वैत की परम अनुभूति मोक्ष की अवस्था है। ईश्वरवादी वेदान्त दार्शनिक जैसे रामानुज के लिए सगुण ब्रह्म (व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर) के प्रति भक्ति एवं निस्वार्थ शरणागति, मोक्ष की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण है। इसके आगे, उनके लिए जीव का ब्रह्म के साथ पूर्ण एकत्व मोक्ष नहीं है कुछ अंतराल हमेशा छूटा रहता है, जिसके अन्दर दैवी सत्ता के साक्षात दर्शन या अपरोक्षानुभूति की गुंजाइश बनी रहती है।

2. भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों द्वारा मोक्ष के विभिन्न प्रकार के उपागमों का वर्णन किया है, जिनकों चार वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। पहला कर्म मार्ग, जो कहता है कि उचित/नैतिक कर्म मोक्ष की प्राप्ति में मुख्य भूमिका निभाते हैं। इसके आगे, *गीता* भी मोक्ष की प्राप्ति हेतु कर्तव्यों को निःस्वार्थ भाव (निष्काम कर्म) से करने का समर्थन करती है। दूसरा भक्ति मार्ग है, जो दैवीय कृपा की शक्तिशाली भूमिका और एक वैयक्तिक ईश्वर (जोकि विष्णु या कृष्ण) द्वारा रूपांतरित सहायता पर बल देता है। जब एक भक्त ईश्वर के प्रति पूर्णतः समर्पित हो जाता है तब उसे इस कृपा की प्राप्ति होती है। तीसरा, ज्ञान मार्ग जो मोक्ष की प्राप्ति हेतु ज्ञान की भूमिका को मुख्य कारक के रूप में बल देता है। बन्धन का कारण अज्ञान है अतः ज्ञान ही इसका उचित उपचार है। शंकर और सांख्य ज्ञान मार्ग के मुख्य समर्थक थे। चौथा ध्यान मार्ग है, जो कि राजयोग है पंतजलि के योग सूत्र में इसका विशद विवेचन किया गया है। इसने एक नियंत्रित मन (चित्त वृत्ति) की शक्तियों के महत्व पर बल दिया। योग या समाधि को चित्त वृत्ति के विरोध के रूप में वर्णित किया गया है। कोई भी समाधि की परम अवस्था में मोक्ष की अवस्था की कल्पना कर सकता है।

   ये सभी उपागम मोक्ष की प्राप्ति की मुख्य अवस्थाओं पर प्रकाश डालते हैं। फिर भी कुछ ग्रन्थ और विद्वानों ने इन उपागमों के समन्वय करने का प्रयास किया है। *भगवद गीता* इस प्रकार के समन्वय का एक श्रेष्ठ उदाहरण है जो किसी व्यक्ति के भौतिक एवं आध्यात्मिक कल्याण के लिए कर्म, ज्ञान एवं भक्ति की भूमिका का वर्णन करती है। यह उपागम समन्वय योग कहलाता है।

इकाई 7 प्रश्न उपनिषद्[7]

रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 परिचय

7.2 प्रश्न उपनिषद्: अवलोकन

7.3 प्रथम प्रश्न : समस्त प्राणियों का स्रोत

7.4 द्वितीय प्रश्न : प्राण: प्राणियों का आश्रय

7.5 तृतीय प्रश्न : प्राण और मानवीय शरीर

7.6 चतुर्थ प्रश्न : प्राण और चेतना की अवस्थाएं

7.7 पंचम प्रश्न : ॐ पर ध्यान

7.8 षष्ठम् प्रश्न : पुरुष का अस्तित्व

7.9 सारांश

7.10 कुंजी शब्द

7.11 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

7.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

यह अध्याय *प्रश्नोपनिषद्* का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करता है। यह *प्रश्नोपनिषद्* की मुख्य अवधारणाओं की रूपरेखा खींचता है और उनके दार्शनिक महत्त्व को रेखांकित करता है।

7.1 परिचय

उपनिषद् वेद का तीसरा वर्गीकरण है, जिसका विषय दार्शनिक, धार्मिक और रहस्यात्मक विचार है। इसके पूर्व के भाग मन्त्र और ब्राह्मण कहलाते हैं जिनके विषय क्रमश: देव–स्तुति और यज्ञानुष्ठान हैं। इस प्रकार ये तीनों (मन्त्र, ब्राह्मण और उपनिषद्) कवि, पुरोहित और दार्शनिक की अभिव्यक्तियां हैं।

वेद के दो महत्त्वपूर्ण विभाग हैं, जिनमें से पहला कर्मकाण्ड कहलाता है। इस विभाग में मन्त्र और ब्राह्मण दोनों सम्मिलित हैं, जिसका अनुसरण एक बहुत बड़ी संख्या में लोग करते हैं, जिनका उद्देश्य आनुष्ठानिक स्तुतियों एवं यज्ञ–विधानों के द्वारा धार्मिक पुण्य प्राप्त करना होता है। दूसरा विभाग ज्ञान–काण्ड कहलाता है। यह ज्ञान का विभाग है जिसमें परम–तत्त्व के वेद–सम्मत प्रकाशना का उल्लेख है, इसके अन्तर्गत् उपनिषद् आते हैं।

[7]श्री दीपक कुमार सेठी, विद्या वाचस्पति शोधक दर्शन केन्द्र जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, अनुवाद– डॉ. अफ़ज़ल अहमद

यजुर्वेद से सम्बद्ध *मुण्डकोपनिषद्* में उपनिषदों की संख्या 108 बताई गई है। इसमें *ऐतरेय* और *कौषीतकि उपनिषद् ऋग्वेद* से, *छान्दोग्य* और *केन सामवेद* से, *ईश* और *बृहदारण्यक शुक्लयजुर्वेद* से, तथा *मुण्डक, प्रश्न* और *माण्डूक्य अथर्ववेद* से सम्बन्धित हैं।

यहाँ हमारी चर्चा का प्रधान विषय *प्रश्न उपनिषद्* है, जिसका सम्बन्ध *अथर्ववेद* से है।

7.2 प्रश्न उपनिषद् : अवलोकन

प्रश्नोपनिषद् अथर्ववेद से सम्बन्धित है, यह अथर्ववेद के महत्त्वपूर्ण शाखाओं में से एक पैप्पलाद शाखा से सम्बन्धित है। ब्रह्मविद्या का ज्ञान लेने आये छः ऋषियों के द्वारा ऋषि पिप्पलाद से पूछे जाने वाले छः प्रश्नों के कारण इस उपनिषद् का नाम *प्रश्नोपनिषद्* पड़ा। पिप्पलाद का वर्णन इस उपनिषद् में एक महान शिक्षक के रुप में हुआ है। आचार्य शंकर इसे *ब्राह्मण* कहते हैं और इसे *अथर्ववेद* से ही सम्बद्ध *मुण्डकोपनिषद्* का पूरक बताते हैं। इसमें कुल 6 अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय एक प्रश्न से आरंभ होता है। सत्य को जानने के इच्छुक 6 ऋषि महान दृष्टा पिप्पलाद के पास गए। ये 6 ऋषि थे– सुकेश, शैव्य, सत्यकाम, अश्वलपुत्र गार्ग्य, विदर्भ के भार्गव, कबन्ध कात्यायन। उनके द्वारा पूछे गये प्रश्न इस प्रकार हैं पहला प्रश्न सृजित प्राणियों की उत्पत्ति से सम्बन्धित है, दूसरा प्रश्न मानव–व्यक्तित्व के संघटकों से जुड़ा हुआ है। तीसरा प्रश्न प्राण की उत्पत्ति और स्वभाव से जुड़ा हुआ है, चौथे का सम्बन्ध मानव–व्यक्तित्व के मनोवैज्ञानिक पक्ष से है। पांचवा प्रश्न प्रणव से जुड़ा हुआ है और छठा प्रश्न मनुष्य के तत्त्वमीमांसीय स्वरुप से जुड़ा हुआ है। *तैत्तिरीय उपनिषद्* की तरह यह भी क्रमशः जीवन के स्थूल तत्त्व से होते हुए सूक्ष्म तत्त्व पर विचार करता है, और इस प्रकार एक–एक करके जड़–तत्त्व की उन सारी तहों को खोल देता है जो आत्मा को स्वरुप से ढंके होती हैं। केवल इसी उपनिषद् में यह उल्लेख मिलता है कि जड़–तत्त्व और आत्मा के संयोग से यह सृष्टि होती है। यह उपनिषद् आत्मा पर आरोपित विभिन्न स्तरों या तलों को मिटा देता है और आत्मा के वास्तविक स्वरुप का पता लगाने का प्रयास करता है। यह जीवात्मा की पहचान परम पुरुष से स्थापित कर जीवात्मा के वास्तविक स्वरूप को परिभाषित करता है। जीवात्मा से परम पुरुष की यह पहचान, शरीर के साथ इसके आरोपित पहचान के नष्ट होने से ही संभव हो पाता है। आइए अब प्रश्न और उत्तर के संदर्भ में प्रवेश करें।

बोध प्रश्न 1

ध्यातव्यः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1. उपनिषद् पद का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

.....

.....

2. यह उपनिषद् 'प्रश्न उपनिषद्' क्यों कहलाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

7.3 प्रथम प्रश्न : समस्त प्राणियों का स्रोत

प्रथम प्रश्न कात्यायन कबन्धि ने मुनि पिप्पलाद से यह किया, "ऋषिवर , जीवों की उत्पत्ति कहां से होती है?" अथवा "ये सारे जीव किस प्रकार उत्पन्न हुए हैं?" तब पिप्पलाद ने उसे उत्तर दिया, "प्रजापति में जीवों के सृजन की कामना हुई। उसने तप किया, उसने जड़ (रयि) और जीवन(प्राण) को यह सोचते हुए उत्पन्न किया कि ये दोनों उसके लिये बहुत प्रकार से जीवों का सृजन करेंगे।" यहां प्राण बोध–संवेदन का तत्त्व या शक्ति है जो गति प्रदान करती है और रयि प्रकृति है जो बहुत सारे रुपों को सृजित करती है और धारण करती है। समष्टि और व्यष्टि प्रकृति के सभी घटक रयि कहलाते हैं। अत्याधुनिक भाषा में इसे जीवन–उर्जा और जड़–तत्त्व कह सकते हैं। इन दोनों के संयोग अथवा ऐक्य से सृष्टि उत्पन्न होती है। ब्रह्माण्ड की सभी वस्तुएं इन्ही दो तत्त्वों से निर्मित हुई हैं। इसके आगे होने वाली चर्चा रहस्यवाद से परिपूर्ण है। इतना कहना ही पर्याप्त है कि सृष्टा ने सूर्य और चन्द्रमा तथा नर एवं मादा को जीवों की उत्पत्ति के लिये सृजित किया। सूर्य को जीवों के जीवन से समीकृत किया जा सकता है। सूर्य इस पृथ्वी पर श्वसन–चक्र का मूर्त स्रोत है। प्रकाश का प्रदाता और प्रेरक होकर सूर्य, प्राण के रुप में विद्यमान रहता है। सूर्य से प्रकाशित और प्रेरित चन्द्रमा रयि का प्रतीक है। उनका कथन है कि जो तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और ज्ञानपूर्वक आत्मा को पाने चाहते हैं ये सूर्य को अधिगत कर लेंगे, यह जीवन–वायु का आधार है। यह अमर और भयरहित है। यह अन्तिम लक्ष्य है। यहाँ से ये वापस नहीं लौटते। इसके अनुसार प्रेरक उर्जा के स्रोत सूर्य की साधनापूर्वक साधक परमात्मा से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। इस प्रक्रिया में तप और ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता है। यह अन्न को नित्य पिता कहता है क्योंकि यह उर्जा और प्रजनन की क्षमता प्रदान करता है। अन्न प्रजापति है, इससे जीवों की उत्पत्ति होती है। अन्न जीवों का साक्षात स्रोत है। यह महत्त्वपूर्ण है कि परिवार नियोजन की संकल्पना के बहुत पहले ही *प्रश्नोपनिषद्* में हम यौन–सम्बन्ध से जुड़े नियम देखते हैं। इस सम्बन्ध में प्रजापति के नियम का जो पालन करते हैं उन्हें ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। जो तप और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उन्हें सत्य की प्राप्ति होती है। यह पवित्र ब्रह्मलोक उनके लिए है, जिनमें छल–कपट, असत्य और माया का अभाव होता है।

7.4 द्वितीय प्रश्न : प्राणः प्राणियों का आश्रय

दूसरे प्रश्नकर्ता विदर्भदेशीय भार्गव हैं, इसका सम्बन्ध व्यक्तिनिष्ठ शक्तियों और उनमें से सबसे प्रधान कौन है, इससे है। भार्गव प्रश्न करते हैं, "प्राणियों को कितने देव धारण करते

हैं और उनमें से कौन इस शरीर को प्रकाशित करता है और उनमें से कौन सबसे श्रेष्ठ है?" इसका तात्पर्य है कि कौन से देवता इस जीव–संसार का पोषण करते हैं ? कितने देवता इस जगत् को प्रकाशित करते हैं? और उनमें से सबसे शक्तिशाली कौन है?

पिप्पलाद इसका उत्तर देते हैं, "आकाश यह देवता है, और वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, वाक्, मनस, आंख और कान। चूंकि ये शरीर को प्रकाशित करते हैं अतः ये अपने अभिमान को प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि ये हम हैं जो शरीर को धारण करते हैं और इसका पोषण करते हैं। यहाँ पिप्पलाद सबसे पहले महत्त्वपूर्ण तत्त्वों की गणना करते हैं–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, वाणी, मन, चक्षु एवं कर्णेन्द्रिय। किन्तु क्या ये देवता हैं? इसके बाद सजीव तत्त्व प्राण की गणना की जाती है, नये और पुराने सभी भाष्यकार जिसकी समता श्वास के साथ स्थापित करते हैं । प्राण का आशय जीवन–तत्त्व से है, यह जीवन–ऊर्जा जो सजीवों को निर्जीवों से अलग करती है। प्राण को इस प्रकार व्याख्यायित किया गया है, जब प्राण ने उन्हें छोड़ा तो ये उपरोक्त शक्तिहीन हो गये। प्राण के बिना ये अस्तित्त्वहीन से हो गये। उन सभी जीवों में प्राण ही जीवन ही का स्रोत है। दूसरे तत्त्वों और शक्तियों ने प्राण की प्रशंसा करते हुए कहा, "जिस प्रकार चक्र के धुरी में सभी अरे मिले हुए होते हैं, उसी प्रकार हर एक वस्तु तुमसे जुड़ी है। सभी देवताओं के मध्य तुम सर्वाधिक शक्तिशाली एवं प्रखर हो। तुम सत्य यथार्थ एवं ऋषियों की चिरन्तन प्रज्ञा हो। हे प्राण! जब तुम बरसते हो तो प्राणी प्रसन्नता से नाच उठते हैं क्योंकि उन्हें प्रचुर अन्न प्राप्त होता है, तुम शुद्धता हो तथा अस्तित्व के स्वामी, माता और पिता हो। तुम जीवों के शरीर, दृष्टि और वाणी में अधिष्ठित हो, तुम हमारा त्याग मत करो। जैसे मां अपने संतान की रक्षा करती है, वैसे तुम मेरी रक्षा करो। हमें अन्न, सौभाग्य, सौन्दर्य और प्रज्ञा प्रदान करो। प्राण तथा अन्य तत्त्वों के मध्य चलने वाले इस संवाद में महर्षि पिप्पलाद ने उद्धृत किया है–इस बात पर बल दिया गया है कि जीवन–तत्त्व अथवा जीवन–ऊर्जा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु है, जिसके अभाव में यह संसार रुक जायेगा।

7.5 तृतीय प्रश्न : प्राण और मानव शरीर

यह तीसरा प्रश्न अश्वलपुत्र ऋषि कौशल्य के द्वारा पूछा गया है। प्रश्न इस प्रकार है, "हे भगवन् ! यह जीवन कहां से जन्म लेता है? यह इस शरीर में किस प्रकार प्रवेश करता है?

प्राण किस प्रकार उत्पन्न होता है? यह प्राणियों के शरीर में किस प्रकार प्रवेश करता है? यह अपनी उर्जा का विभाजन विभिन्न शरीर के अंगों में किस प्रकार करता है? शरीर से इसका निष्क्रमण किस प्रकार होता है? शरीर से बाहर यह किस प्रकार अस्तित्वमान रहता है? यह अन्दर किस प्रकार बना रहता है? ऋषि पिप्पलाद उत्तर देते हैं, "तुमने बहुत से कठिन प्रश्नों को पूछा है। क्योंकि तुम बहुत पवित्र हो इसलिए तुमसे कहूंगा। ऋषि पिप्पलाद कहते हैं यह अच्छा प्रश्न है किन्तु इसका उत्तर देना कठिन है। जिस प्रकार राजा राजकर्मचारियों को कुछ चिन्हित स्थलों की देखभाल के लिये कहता है। उसी प्रकार प्राण भी विभिन्न कार्यों को अपने विभिन्न उपभागों में बांट देता है। प्रधान प्राण का स्थान आंख, नाक, कान और मुंह होता है। मध्य प्राण शरीर के मध्य भाग में स्थित होता है। निम्न प्राण नीचे के अंगों में अवस्थित रहता है। आत्मा हृदय में अवस्थित होता है और यहां 101 नाड़ियां होती हैं, हर नाड़ियों में सैकड़ों शाखायें होती हैं, और हर शाखा की 72,000 उपशाखाएं होती हैं जिनसे प्राण स्पन्दित होता है।

यूनानी चिकित्साशास्त्र से बहुत पहले हृदय की संरचना का विवरण यहाँ प्राप्त होता है। हृदय की संरचना और रक्तवाहिनी नाड़ियों का यह विवरण ऋषियों की अन्तःप्रज्ञात्मक विधि का उल्लेखनीय उदाहरण है। जहाँ विज्ञान असिद्ध हो जाता है वहाँ यही विधि उपादेय होती है।

तीसरे प्रश्न के उत्तर को सारबद्ध करके पिप्पलाद कहते हैं, "प्राण, तथा जीव से इसके सम्बन्ध, शरीर को शक्ति प्रदान करने की इसकी क्षमता एवं परम शक्ति से इसके सम्बन्ध को समझने से अमरता को प्राप्त करने में सहायता मिलती है। यह तीसरा प्रश्न मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक पड़ताल है, यह आश्चर्यजनक है कि प्राचीन काल की सभ्यताओं में केवल भारत के चिन्तकों ने इसको पता लगाने की महत्ता को समझा कि मनुष्य इस ग्रह पर किस प्रकार प्रकट हुआ। प्राणियों सहित इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? यह एक सृष्टि थी अथवा एक संयोग? ऋषि इसे संयोग नहीं मानते थे। बिना किसी सन्देह के यह एक सृष्टि थी। उनके अनुसार जो जगत् की उत्पत्ति, प्रसार, अधिष्ठान और इसके पांच भागों में वर्गीकरण को जानते हैं, उसके पास प्राण का ज्ञान है और यह अमरता को प्राप्त करता है।

7.6 चतुर्थ प्रश्न : प्राण और चेतना की अवस्थाएं

अब सूर्यकुल के गार्ग्य के द्वारा चौथा प्रश्न पूछा जाता है। इस पुरुष में कौन सोता है और कौन जागता, तथा कौन देव स्वप्न देखता है? किसे यह सुख अनुभव होता है और किसमें यह प्रतिष्ठित है? प्रश्न को इसप्रकार रखा जा सकता है। एक सोते हुए मनुष्य के शरीर में विद्यमान विभिन्न देवताओं की क्या स्थिति होती है? उसमें से कौन सोते रहता है और कौन जागते रहता है और कौन स्वप्न देखता है, कौन सुख का अनुभव करता है, ये किसको अपना आश्रय बनाते हैं? यह एक अद्भुत प्रश्न है। इसके उत्तर में पिप्पलाद सूर्य के किरणों का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं, उनके अनुसार जब सूर्यास्त होता है तो किरणें उर्जा के स्रोत में विलीन हो जाती हैं। इसी प्रकार प्रगाढ़ अवस्था में इन्द्रियां परम–तत्त्व में विलीन हो जाती हैं। इसके बाद काव्यात्मक ढंग से पिप्पलाद कहते हैं– जिस प्रकार चिड़ियां रात होने पर अपने आश्रय वृक्ष पर लौट आती हैं, उसी प्रकार सभी इन्द्रियां परम पुरुष को लौट आती हैं।

तत्पश्चात्, सुप्ति अवस्था के विषय में पिप्पलाद कहते हैं, "सोते समय, स्वप्न की अवस्था में जाग्रत् अवस्था में अनुभव की गई वस्तुओं को ही अनुभव करता है। जाग्रत् अवस्था में देखी गई वस्तुओं के चित्र खींचता है, यह जो कुछ सुनता और अनुभव करता, जो भू–दृश्य इसके देखें हुए या अनदेखे हैं, सबकुछ जो इसे ज्ञात है या अज्ञात है, यह उसके चित्र खींचता है। मनोविज्ञान के इतिहास में स्वप्नों की व्याख्या का यह पहला प्रयास कहा जा सकता है। पिप्पलाद अपनी रहस्यवादी शिक्षा को जारी रखते हुए कहते हैं, "पाँच तत्त्व, दस इन्द्रियां, मन, अहंकार, इन्द्रिय–विषय स्पर्श, रस, रुप, गन्ध और शब्द, बुद्धि और सब जो यह समझती है, हृदय और जो सब जो यह अनुभव करता है, प्रकाश और जो कुछ प्रकाशित होता है, यह सब कुछ परम सत्ता के द्वारा नियन्त्रित होता है।" यह परम सत्ता दृष्टा है। यह सभी वस्तुओं को स्पर्श करती है, सभी का रसास्वाद करती है, सभी का अनुभव करती है। यह कर्त्ता है। यह ज्ञाता है। इसका विनाश नहीं होता। जो इस छायारहित, रंगरहित, शरीररहित, द्युतिमान, अविनाशी परम तत्त्व को समझता है, यह सबकुछ जानता है। ऐसा मनुष्य अमर है। और अन्त में यह कहता है, "हे पुत्र! जो इस अविनाशी को जानता है, जिसमें सारे देव, जीवन–प्राण और तत्त्व आरोपित हैं, यह वस्तुतः इस ब्रह्माण्ड को जानता है।" उपरोक्त वाक्य

का अर्थ है कि जो अविनाशी प्राण और तत्त्वों को जानता है, यह वस्तुतः सब कुछ जानता है। यह सब कुछ जानता है जो कुछ जानने योग्य है।

7.7 पंचम प्रश्न : ॐ पर ध्यान

शैव्य सत्यकाम पिप्पलाद से पूछते हैं, "हे भगवन! मनुष्यों में जो जीवनपर्यन्त ओंकार का चिन्तन करते हैं, यह ऐसा करके किस लोक को जीत लेता है?

ऋषि उत्तर देते हैं कि ओंकार अविनाशी शब्द है। यह पूर्ण ब्रह्म का सूचक है। जो बुद्धि मान व्यक्ति इसका चिन्तन करता है, वो सभी लोकों को पा लेता है। यदि कोई व्यक्ति इस शब्द के किसी एक अक्षर पर भी ध्यान लगाता है तो यह महान प्रगति को प्राप्त करता है। यह महान आनन्द का अनुभव करता है। ओंकार के दो अक्षरों का उच्चारण करके, यजुर्वेद की स्तुतियों की कृपा से व्यक्ति उच्च अवस्था को प्राप्त कर लेता है और स्वर्गलोक को जाता है। किन्तु यह लौट आता है। किन्तु जो ओंकार के तीनों अक्षरों का एक साथ चिन्तन करता है, यह सूर्य और शक्ति के उच्चतम लोक को प्राप्त होता है। उसके सारे पाप कट जाते हैं। यह भौतिक और आध्यात्मिक सभी कर्मों को कुशलतापूर्वक करता है। इसी से मिलता–जुलता प्रकरण *माण्डूक्य उपनिषद* में भी पाया जाता है, जहां ओंकार की महिमा का वर्णन किया गया है।

7.8 षष्ठम् प्रश्न : पुरुष का अस्तित्व

भारद्वाज सुकेश पिप्पलाद से पूछते हैं, "भगवन! कौशल देश के राजा हिरण्यनाभ ने मुझसे आकर यह प्रश्न पूछा था, "क्या तू सोलह कलाओं वाले पुरुष को जानता है? मैंने उत्तर दिया कि मैं उसे नहीं जानता, क्योंकि यदि मैं उसे जानता, तो मैं तुम्हें अवश्य उसके विषय में बताता, मैं तुमसे झूठ नहीं कह सकता क्योंकि जो असत्य भाषण करता है, वह जड़ से सूख जाता है, इतना कहकर यह चुपचाप चला गया। अब मैं आपसे उसके विषय में पूछता हूं कि यह पुरुष कौन है?" उपरोक्त कथन का आशय यह है कि कौशल के राजा ने मुझसे पूछा कि क्या मैं सोलह कलाओं वाले पुरुष को जानता हूँ, मैंने उत्तर दिया कि नहीं जानता हूं क्या आप इसका उत्तर दे सकते हैं?

पिप्पलाद ने उत्तर दिया, "वत्स! यहां भी यह पुरुष विद्यमान है, प्रत्येक जीव के अन्तरतम में यह विद्यमान है, क्योंकि उसमें ही सोलह कलाओं का जन्म होता है।" यह परम पुरुष प्रत्येक जीव के शरीर के अन्दर विद्यमान है। स्रष्टा ने जगत् की सृष्टि के समय विचार किया कि इस शरीर में ऐसा क्या है जिसके चले जाने पर मैं भी चला जाऊंगा और जिसके बने रहने पर मैं भी बना रहूंगा। तब उसने प्राण रचा, और फिर प्राण से श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन और अन्न को, अन्न, वीर्य, और उससे सब कुछ अस्तित्व में आया। तप, मन्त्र, कर्म और लोकों को और लोकों में नाम को उत्पन्न किया। जैसे नदी सागर में मिलकर उसमें विलीन हो जाती है और अपने नाम–रूप की पहचान खो देती है उसी प्रकार से जीवात्मा परमात्मा में अपनी पहचान मिटा देता है, परमात्मा चक्के की नाभि की तरह है जिसमें सारे अरे आकर मिले होते हैं, जब कोई परम पुरुष को जान लेता है तो यह परम पुरुष में विलीन हो जाता है। परम पुरुष से ही सब कुछ उत्पन्न होता है और परम पुरुष में ही सबकुछ अन्त में विलीन हो जाता है। यह आत्मा हमें अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाने में सहायता करती है। शरीर से हमारे आत्मा की मिथ्या पहचान ही अज्ञान है और

आत्मा की परमात्मा से पहचान ही ज्ञान है। यह परम पुरुष अपने स्वरुप में एक, अखण्ड और अविभाज्य सत्ता है। जीवात्मा का नानात्व या अनेक होने का भाव अज्ञान और माया है। नानारुप जीवात्मा जब परम पुरुष में विलीन हो जाता है तो यह एक, अखण्ड अविभाज्य सत्ता वाला हो जाता है।

अपने प्रश्नों का उत्तर सुनकर, उन्होनें प्रशंसा की और कहा, "आप वास्तव में हमारे पिता हैं। आप हमें अज्ञान से पार किनारे ले आये हैं।"

बोध प्रश्न 2

ध्यातव्यः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1. प्राण से क्या तात्पर्य है?

.....

.....

.....

.....

.....

2. तादात्म्यता से क्या तात्पर्य है?

.....

.....

.....

.....

.....

7.9 सारांश

प्रश्नोपनिषद् का आरम्भ सृष्टि अथवा इस विश्व में सजीव और निर्जीव सत्ताओं की उत्पत्ति तथा इसका अवसान परम पुरुष की धारणा से होता है जिससे मुक्ति संभव होती है। जीवात्मा की वास्तविक पहचान परम पुरुष ही है। *प्रश्नोपनिषद्* के अनुसार, प्राण सजीव को निर्जीव से अलग करता है, प्राण अपने वास्तविक स्वरूप में शुद्ध चेतना, स्वप्रकाश, स्वयं–प्रमाण और अविकारी है। सजीव अपना स्वभाव जन्म के समय ग्रहण करता है। यह सत्ता का उपाधिकृत स्वभाव है। इसका वास्तविक स्वरुप अज्ञान के आवरण से ढंका हुआ है और सतत विद्यमान है। इस प्रकार सत्ता का वास्तविक स्वरुप यह पाना है जो यह पहले से है। मुक्ति का अर्थ परम पुरुष से एकात्म स्थापित करना है। जीवात्मा का परम पुरुष के साथ एकात्म स्थापित हो जाने के बाद जीवात्मा परमात्मा में विलीन होकर परमात्मा ही हो जाता है। यह परम पुरुष अद्वैतस्वरुप है और इसजगत् का प्रत्येक प्राणी मुक्त होकर उसी में विलीन हो जाता है।

7.10 कुंजी शब्द

ज्ञान काण्ड : वेद का ज्ञान से सम्बन्धित भाग (आत्मा की प्रकृति, विश्व का कारण, मोक्ष इत्यादि की चर्चा करने वाला भाग)

ब्रह्म विद्या : संस्कृत शब्द ब्रह्म और विद्या से व्युत्पन्न, शास्त्रीय ज्ञान की वह शाखा जिसमें परमसत्ता का अध्ययन किया जाता है।

प्राण : सांस लेना, जीवित रहना।

रयि : जड़ (प्रकृति)

माया : अभिधार्थ, भ्रम या जादू। माया शब्द के भारतीय दर्शन में प्रसंगानुसार अनेक अर्थ हैं।

ॐ : उपनिषदों में वर्णित पवित्र ध्वनि और आध्यात्मिक प्रतीक। यह परम सत्ता के सार, चेतना या ब्रह्म को विशेषित करता है।

7.11 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

जोशी, के. एल., ओ. एन. बिमल एण्ड बिन्दिया त्रिवेदी. *112 उपनिषद्स*, वोल. 2. देल्हीः परिमल प्रकाशन, 2006.

डायसन, पॉल. *सिक्स्टी उपनिषद्स ऑफ द वेद*, वोल. 2, ट्रान्स. वी. एम. बेडेकर एण्ड जी. बी. पल्सुले. न्यू देल्हीः मोतीलाल बनारसीदास, 1987.

तत्त्वानन्द, स्वामी. *उपनिषदिक स्टोरीज एण्ड देयर सिग्निफिकेन्स*. कलडीः श्री रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, 1988.

देसाई, आर. जी. उपनिषद्सः *एन्शियन्ट विज़डम ऑफ इण्डिया*. मुम्बईः द एशियन एज पब्लिशर्स लि., 2006.

शर्मा, शुभ्रा. *लाइफ इन द उपनिषद्स*. न्यू देल्हीः अभिनव पब्लिकेशनस, 1985.

श्री ऑरोबिन्दो. *एट उपनिषद्स*. पॉण्डिचेरीः श्री ऑरोबिन्दो आश्रम, 1953.

हिन्दी अध्ययन सामग्री

प्रश्नोपनिषद्, शांकरभाष्य सहित. गोरखपुरः गीताप्रेस, विक्रम सम्वत् 2066.

7.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. ऐतेरेय उपनिषद् में, उपनिषद् शब्द समीप बैठने के अर्थ में प्रयुक्त है। उपनिषद् शब्द तीन शब्दों, उप–नि–सद् से मिलकर बना है, उप का अर्थ है समीपता, नि का अर्थ है, ज्ञान के प्रति अग्रसर होना और धातु सद् के तीन अर्थ हैं– नष्ट होना, पहुँचना या प्राप्त करना और ढीला पड़ना। द्वितीयतः, उपनिषद् का अर्थ है यह पुस्तक जो ब्रह्म ज्ञान की चर्चा करती है। कुछ विद्वान उपनिषद् का अर्थ है नीचे समीप बैठना करते हैं। गुरु के समीप बैठे शिष्य ज्ञान प्राप्त करते हैं या अपने संदेहों की चर्चा करते हैं।

2. यह प्रश्न उपनिषद् कहलाता है, क्योंकि इस उपनिषद् का मर्म प्रश्न हैं। प्रश्न उपनिषद् छह प्रश्नों और उनके उत्तरों को केन्द्रिय रूप में रखता है, इसलिए इसका नाम ऐसा प्रसिद्ध हुआ। ये प्रश्न हैं; जीवन कैसे आरम्भ हुआ? जीवित कौन है? मनुष्य की प्रकृति क्या है और ऐसी प्रकृति क्यों है? मानव किससे सिद्ध है? ध्यान क्या है और क्यों करना चाहिए? मानव में अमरत्व क्या है?

बोध प्रश्न 2

1. प्राण शरीर का सूक्ष्म तत्व है। इसका दृश्यमान वायु है और अदृश्य वह शक्ति है जो शरीर में प्रवाहित है और इसे धारण करती है। यह हमारे जीवन और गति के लिए उत्तरदायी है। प्राण के बिना जीवित नहीं रहा जा सकता है। प्राण अन्नमय कोष को मनोमय कोष से जोड़ता है। प्राण से गति है। प्राण से ही कोई प्राणी जीवित कहलाता है, अन्यथा अजीवित (मृत) कहलाता है।

2. 'तादात्म्य' की दार्शनिक अवधारणा इसे यह सम्बन्ध मानती है, जो एक व्यक्ति स्वयं से या स्वयं के सादृश्य (या समरूप) के साथ रखता है। इसके कारण ही कोई व्यक्ति जीवनपर्यन्त पहचाना जा पाता है। प्रश्न उपनिषद् में, इस ब्रह्माण्ड सभी प्राणियों का तादात्म्य ब्रह्म से माना गया है। यह जीवात्मा और परमात्मा के मध्य का तादात्म्य है। तादात्म्यता इस ब्रह्माण्ड में प्रत्येक की प्रतिभिज्ञा है, जोकि परमसत्ता के मूल में विराजित है। नाम और रूप का भेद परम सत्ता से तादात्म्यता के पश्चात् परिसमाप्त हो जाता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8 मुण्डक उपनिषद्[8]

रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 परिचय

8.2 मुण्डकोपनिषद् का दर्शन

8.3 अपराविद्याः निम्न ज्ञान

8.4 पराविद्याः आत्म ज्ञान

8.5 ब्रह्मः ब्रह्माण्ड का कारण

8.6 कारण–कार्य सिद्धांत

8.7 ब्रह्मः आदि कारण

8.8 ब्रह्म की प्रकृति

8.9 आत्मा की प्रकृति

8.10 जीव तथा ब्रह्म की तादात्म्यता

8.11 ब्रह्म की अनुभूति के साधन

8.12 आत्मानुभूति के साधन

8.13 सारांश

8.14 कुंजी शब्द

8.15 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

8.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

- उपनिषदों की सर्वोत्तम शिक्षा 'ज्ञान का भंडार' है। लम्बे समय से यह ज्ञान सक्षम गुरुओं द्वारा योग्य शिष्यों को पीढ़ी दर पीढ़ी दिया जाता रहा है। अन्य शब्दों में, यह ज्ञान केवल शिक्षा की गुरुकुल प्रणाली में ही प्रदान किया जाता था जहाँ शिष्य अपने गुरु की वाणी से निकले ज्ञान के इस भण्डार को सुनकर अपने में समाहित कर लेते थे। इस इकाई में विद्यार्थी;
- *मुण्डक उपनिषद्* के भव्य उपदेशों का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- ज्ञानार्जन के आकांक्षी सत् की अपनी समझ को और गूढ़ बनाने में सक्षम होंगे।
- यह जानेंगे कि ब्रह्म विद्या या परम ही मुण्डक उपनिषद् के उपदेशों का मुख्य उद्देश्य है।

[8] डॉ जॉन पीटर, सें. एण्टोनीज महाविद्यालय, कोट्टागिरि, अनुवाद– डॉ. आर. एस. दूबा, दिल्ली

8.1 परिचय

मुण्डकोपनिषद् की उत्पत्ति *अथर्व वेद* से हुई है। यह बहुत रहस्यवादी उपनिषद् है।

शब्द 'मुण्डक' से तात्पर्य मुंडा हुआ सिर है। इस उपनिषद् के उपदेश मुंडे हुए सिर के समान आत्मा के ऊपर पड़े अज्ञानता के पर्दे को हटा देते हैं। इस उपनिषद् में तीन अध्याय हैं जो आगे दो खण्डों में विभाजित होते हैं। *मुण्डकोपनिषद्* में लगभग साठ श्लोक हैं। प्रथम अध्याय में उपदेशों की महानता तथा प्रथम खण्ड में उपदेशों की पद्धति का वर्णन किया गया है। दूसरे खण्ड में अपरा विद्या, अर्थात् अनुष्ठानों का निम्न ज्ञान, मुंडन तथा लौकिक क्रियाओं की व्याख्या की गई हैं। दूसरा अध्याय, ब्रह्मांड की उत्पत्ति के कारण के रूप में ब्रह्म को स्थापित करने तथा जीव एवं जगत् के कार्य–कारण सिद्धांत से संबंधित है। तीसरा अध्याय, आत्म–ज्ञान प्राप्त करने के साधनों तथा माध्यमों और मोक्ष के लिए आत्म–ज्ञान के महत्व पर चर्चा करता है।

8.2 मुण्डकोपनिषद् का दर्शन

मुण्डकोपनिषद् में गुरु अंगिरस ने तपस्वी शौनक को ऐसा ज्ञान, जिसे जानने के पश्चात् कुछ भी जानने को शेष नहीं रहता है, के ज्ञान का उपदेष दिया है। *मुण्डकोपनिषद्* में भेद तथा विरक्ति के माध्यम से आत्म–ज्ञान के विषय पर सुव्यवस्थित दृष्टिकोण से विचार किया गया है। *मुण्डकोपनिषद्* में आत्म–ज्ञान के संबंध में विस्तार से चर्चा की गई है तथा इसका सुस्पष्ट प्रतिपादन किया गया है। यहाँ परम सत् के सर्वोच्च ज्ञान तथा अनुभूतिमूलक संसार के निम्नतर ज्ञान के बीच सुस्पष्ट अंतर प्रस्तुत किया गया है। कोई व्यक्ति केवल उच्चतर ज्ञान के माध्यम से ही परम सत् को प्राप्त कर सकता है, न कि जगत् तथा अनुष्ठानों के निम्न ज्ञान द्वारा। आत्म–ज्ञान की शिक्षा परा तथा अपरा विद्या में ज्ञान के विभाजन से आरम्भ होती है। इस उपनिषद् में अपरा विद्या के संबंध में आरम्भ विस्तार से चर्चा की गई है।

गुरु परम्परा की महान विरासत, आगामी युगों की मुख शिष्य परम्परा, आत्मावलोकन के ज्ञान को आगे बढ़ाती है। स्वयं ब्रह्म के द्वारा आत्म ज्ञान का प्रतिपादन किया गया। इस ज्ञान को सर्वप्रथम अथर्व ऋषि को प्रदान किया गया था। अथर्व उनका ज्येष्ठ पुत्र एवं मानस पुत्र भी था। इससे ज्ञानार्जन की गुरु–शिष्य परम्परा आरम्भ हुई। अथर्व ने इसकी शिक्षा अंगि को दी। अंगि ने यह ज्ञान आगे भारद्वाज वंश के ऋषि सत्यावाह को प्रदान किया। *मुण्डकोपनिषद्* के वर्तमान ज्ञाता अंगिरस ऋषि ने इस ज्ञान को सत्यवाहा से सीखा। शौनक ने अंगिरस से यह ज्ञान सीखने के लिए यज्ञ किए तथा अनेक व्यक्तियों को भोजन कराया। उन्होंने स्वयं को नम्रतापूर्वक गुरु के चरणों में *नतमस्तक* करते हुए पूछा 'हे गुरु, कृपया मुझे उस सत्य का ज्ञान प्रदान करें जिसे जानकर मुझे सर्व के ज्ञान की प्राप्ति हो जाए'। गुरु ने उन्हें बताया कि ज्ञान के दो चरण हैं, परा विद्या तथा अपरा विद्या।

8.3 अपराविद्याः निम्न ज्ञान

अपराविद्या छः शाखाओं सहित चार वेदों यथा, ऋक्, यजुर्, साम तथा अथर्व वेदों का प्रथम भाग है। इनका ज्ञान भौतिक लाभों को प्राप्त करने के लिए है। भौतिक जगत् का सम्पूर्ण

ज्ञान अपरा विद्या (भौतिक पदार्थों का ज्ञान) के अन्तर्गत् आता है। वेदों का उपासना खण्ड मानसिक क्रियाओं, जैसे ध्यान से सम्बन्धित है। ये दोनों शारीरिक तथा मानसिक क्रियाएं और इनसे प्राप्त व इनके स्वयं के प्राप्त ज्ञान अपरा विद्या के अन्तर्गत् आते हैं। इनका ज्ञान व्यक्ति को क्षणिक–जगत् की ओर ले जाता है। प्रत्येक अनुष्ठान व्यक्ति को अनुष्ठान का लाभ प्रदान करता है। उपनिषद् मनीषियों के अनुसार वेद मन्त्रों में उल्लेखित अनुष्ठान कार्य तथा उनके फल यदि पूर्ण निष्ठा के साथ सम्पन्न किये जाये तो सत्य होते हैं।

अग्निहोत्र नामक अनुष्ठान एक अत्यंत प्रसिद्ध अनुष्ठान है तथा इसे नित्य किया जाता है। यह माना जाता है कि यह सदियों से जांचा–परखा अनुष्ठान है। यह निश्चित है कि जो व्यक्ति इस अनुष्ठान को करता है उसे वांछित फल प्राप्त होते हैं। उपनिषद्, इस अनुष्ठान के विवरण सहित उन विचलनों तथा असावधानियों का उल्लेख प्रस्तुत करता है जिनसे अनुष्ठान के दौरान बचा जाना चाहिए। इस विवरण का उद्देश्य, अनुष्ठान के दौरान 'क्या करें क्या न करें' की जटिलताओं का उल्लेख करना है। यहाँ तक कि अनुष्ठान करने के स्थान तथा दिशा का भी उल्लेख किया गया है। उत्तर तथा दक्षिण दिशा के मध्य होम कुंड (अग्नि–स्थल) तैयार किया जाता है। अनुष्ठानकार्ता को अपना चेहरा पूर्व की ओर करके बैठना होता है। वांछित फल, अनुष्ठान के सावधानीपूर्वक निष्पादन पर निर्भर करता है। इन अनुष्ठानों को उचित रूप से न किए जाने पर वांछित फल प्राप्त नहीं होते हैं। अनुष्ठान की क्रियाएं केवल उचित एंग से प्रज्जवलित अग्नि ज्वालाओं में ही की जा सकती हैं। वांछित फलों के प्रकार के आधार पर ये अनुष्ठान दो प्रकार के होते हैं। प्रथम प्रकार का अनुष्ठान व्यक्ति द्वारा जीवन के दौरान वांछित फल प्राप्त किए जाने के लिए किया जाता है। द्वितीय प्रकार का अनुष्ठान उच्चतम जगत् जैसे की स्वर्ग की प्राप्ति, जिसे केवल मृत्यु के पश्चात प्राप्त किया जा सकता है, के लिए किया जाता है। अग्निहोत्र अनुष्ठान अन्य सभी अनुष्ठानों जैसे की समाज–सेवा, धर्मार्थ के कार्य, प्रार्थना तथा तीर्थयात्रा इत्यादि का भी प्रतिपादन करता है। यदि इन्हें वांछित इच्छा के साथ किया जाता है तो लोगों को इससे अवश्य ही लाभ प्राप्त होता है।

अनुष्ठान क्रियाओं के परिणाम

अनुष्ठान क्रियाओं तथा उनके लाभों का ब्यौरा प्रस्तुत करके उपनिषद् लोगों को लौकिक तथा अलौकिक आनन्दों की क्षणिकप्रकृति का ज्ञान प्रदान करता है। सीमित तथा अल्पकालीन परिणाम अनन्त नहीं हैं। केवल अज्ञानी व्यक्ति ही इन्हें अनन्त मानता है। यदि कोई अनुष्ठानकर्ता स्वयं को बुद्धिमान तथा पथप्रदर्शक मानता है तो यह मूर्ख है। अनुष्ठानों को करने वाले व्यक्ति जो स्वयं को बुद्धिमान समझते हैं, ये उन नेत्रहीन व्यक्तियों द्वारा बिना किसी इच्छा के भी किए जा सकते हैं जिन्हें किसी भौतिक आनन्द की इच्छा न हो। ऐसे व्यक्ति प्रकाशमयी मार्ग, शुक्लगति, ब्रह्मलोक को जाते हैं और अन्ततः आत्म–ज्ञान व मोक्ष को प्राप्त करते हैं। अनुष्ठान क्रियाओं में यदि विचार पर ध्यान केन्द्रित न किया जाए तो अनुष्ठानकर्ता केवल अनित्य तथा क्षणभंगुर जगत् में ही रहते हैं। अनुष्ठान का ज्ञान एवं उसकी क्रिया का वर्णन, जिसे अपरा विद्या या सीमित ज्ञान कहते हैं, हमें उच्चतर ज्ञान परा विद्या के क्षेत्र में ले आता है।

8.4 पराविद्याः आत्मज्ञान

पराविद्या आत्म–ज्ञान का यह माध्यम है जिसके द्वारा अनश्वर का ज्ञान प्राप्त होता है।

आत्म ही सभी प्रारम्भों का स्रोत है। यह शाश्वत है, सर्वव्यापी किन्तु सूक्ष्म, अनश्वर, अदृश्य तथा अज्ञान है। पराविद्या मन की शुद्धि के द्वारा परम सत् की ओर ले जाती है। भौतिक वस्तुओं को प्राप्त करने व उनसे अलग होने का अनुभव पीड़ादायी होता है। इन वस्तुओं से प्राप्त आनन्द क्षणिक व अवास्तविक होता है। यह क्षणिक पीड़ा व आनन्द व्यक्ति को अपराविद्या के दोषों से अवगत करता है। एक सच्चा शिष्य ऐसे तत्व की तलाश करता है जो सभी सीमाओं से मुक्त हो।

8.5 ब्रह्मः ब्रह्माण्ड का कारण

इस उपनिषद् प्रथम खण्ड के दूसरे अध्याय में जगत् के मूल तत्व के रूप में ब्रह्म का वर्णन किया गया है। ब्रह्म का सम्बन्ध जगत् के साथ कार्य–कारण सम्बन्ध के समान माना गया है। ब्रह्म को जगत् के भौतिक व बौद्धिक मूल तत्व के रूप में माना गया है अर्थात् निमित्त कर्म या उपादान कर्म। ब्रह्म को जगत् के भौतिक मूल तत्व के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए मकड़ी तथा उसके जाले का उदाहरण दिया गया है। इसके अन्य उदाहरण हैं; स्वर्ण और आभूषण, मिट्टी और बर्तन, सागर और लहरें। उपनिषद् एक मूलतत्व और अनेक प्रभावों का वर्णन करने के लिए अग्नि तथा चिंगारियों का उदाहरण प्रस्तुत करता है। अग्नि की प्रकृति, जैसे ताप व प्रकाश दोनों, चिंगारियों में भी पाई जाती है। गैर–अनिवार्य गुण जैसे नाम व आकार, रंग, अग्नि तथा चिंगारियों में भिन्न होते हैं। इसी प्रकार ब्रह्म अनेक जगत् रूपी प्रभावों का एक मात्र कारण है। ब्रह्म तथा जगत् की मूल प्रकृति समान है किन्तु गैर–अनिवार्य प्रकृति भिन्न है। जैसे चिंगारी स्वयं ही अग्नि में लीन हो जाती है। तथा यह अग्नि के बिना स्वतः प्रज्वलित नहीं हो सकती। उसी प्रकार जगत् भी ब्रह्म के बिना प्रकट नहीं हो सकता और यह अन्ततः ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है।

पुनः कार्य–कारण सम्बन्ध का वर्णन करते हुए उपनिषद् कहता है कि कार्य सदैव कारक–तत्व पर निर्भर करता है जबकि कारक–तत्व स्वतंत्र रहता है। कार्य अपने तत्व, उत्पत्ति, स्थिति तथा विखण्डन के लिए कारक–तत्व पर निर्भर करता है, जबकि कारक स्वयं के लिए एक स्वतंत्र तत्व तथा स्वःअस्तित्व–धारक है। किन्तु कार्यों का कोई स्वतत्व नहीं होता। उनमें केवल रूप, नाम, क्रिया तथा परिवर्तन होता है। चेतन ब्रह्म तथा निष्क्रिय जगत् के कारण–कार्य का आगे और वर्णन करते हुए मानव शरीर तथा उसके अक्रिय बाल तथा नाखूनों का उदाहरण दिया गया है। अग्नि तथा चिंगारी के पूर्ववर्ती उदाहरण में इनके बीच का सम्बन्ध भौतिक वस्तु से भौतिक वस्तु का सम्बन्ध था। यहाँ सम्बन्ध चेतन सिद्धांत तथा अचेतन सिद्धान्त का है।

ब्रह्म एक कारक तत्व है जबकि इसके प्रभाव अनेक हैं। प्रभावों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। यह मिथ्या है। ब्रह्म स्वतंत्र रूप से विद्यमान है और यह ही एक मात्र सत् तत्व है। ब्रह्म में उत्पत्ति, अस्तित्व तथा विनाश, प्रत्येक क्षण उपस्थित रहता है। ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है तथाजगत् निष्क्रिय एवं भौतिक ततव है। ब्रह्म चौतन्य है तथा यह अपने इस 'होने' के साथ अपने सभी जगतीय कार्यों में विद्यमान होता है। जिस प्रकार आभूषण को उसके मूल तत्व स्वर्ण से पृथक नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार जगत् को भी ब्रह्म से अलग नहीं किया जा सकता।

8.6 कारण–कार्य सिद्धांत

ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्म के बीच के सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए यह कहा जाता है कि कारण सदैव प्रभाव में विद्यमान होता है। सत्कार्यवाद कारणता का यह सिद्धांत है जो कारण में कार्य की पूर्व उपस्थिति पर विश्वास करता है। ब्रह्माण्ड की प्रत्यक्ष रूप से उत्पत्ति से पूर्व ही ब्रह्म द्वारा इसकी आवश्यकता तथा इसके ज्ञान की कल्पना कर ली गई थी। ब्रह्माण्ड का नाम तथा रूप पहले से ब्रह्म सम्भावित रूप से विद्यमान था। वेदान्त की भाषा में वास्तविकता में जगत् का कोई विकास या संरचना कभी नहीं होती अपितु सदैव जगत् के रूप में ब्रह्म की अभिव्यक्ति होती है। जगत् का निर्माण किन्ही नई वस्तुओं से नहीं हुआ है। भौतिक जगत् वास्तव में पूर्व सम्भाव्य आकारिक जगत् का प्रक्षेपण मात्र है। इस प्रकार संसार का सृजन चार चरणों में हुआ है; प्रथम चरण में पांच तत्व–अंतरिक्ष, वायु, अग्नि जल तथा पृथ्वी की कल्पना की गई। दूसरे चरण में 'अहम्' तथा 'मन' लाए गए। तीसरे चरण में पांच मूल तत्वों का सृजन निश्चित अनुपातों में सूक्ष्म तत्वों के मिश्रण द्वारा किया गया। अन्ततः स्थूल शरीर प्रकट हुए।

8.7 ब्रह्मः आदि कारण

वेदों में निर्धारित सभी यज्ञों में किए जाने वाले अनुष्ठानों की उत्पत्ति भी ब्रह्म से हुई है। उपनिषद् के अनुसार यज्ञ से संबंधित प्रत्येक कार्य, दीक्षा, एक प्रकार की घास, जिसे अनुष्ठानकर्ता अनुष्ठान के समय धारण करता है, उसकी पत्नी, यज्ञ की अग्नि, यज्ञीय पशु के बांधने का स्थान, यज्ञीय सामाग्रियां, दान–दक्षिणा, गाय आदि सब ब्रह्म से ही आते हैं। यहां तक कि अनुष्ठान क्रिया की गुणवत्ता तथा यज्ञ के लाभों का आनन्द भी ब्रह्म से ही प्राप्त होता है। उपनिषद् आगे अन्य सदगुणों तथा विभिन्न प्रकार के जीवों, जैसे अलौकिक जीव, विभिन्न स्तरों के भगवान, अनुष्ठान के लिए प्रेरणा, धर्मग्रंथों तथा गुरुओं में आस्था, यज्ञ में प्रयोग होने वाले अनाज, जीवन–शक्ति, मवेशी, पक्षी, तपस्या तथा भक्ति, यज्ञों में प्रयोग होने वाले यंत्र तथा आचार संहिता का वर्णन करता है। ये सभी तत्व भी उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म से प्राप्त होते हैं। वस्तुएं तथा दो नेत्रों, दो कानों, दो नासिकाओं, एक मुंह तथा एक जीभ के संवेदी अनुभव ब्रह्म के प्रभाव से ही उत्पन्न होते हैं। महासागर, सभी पर्वत, सभी प्रकार की नदियां तथा पेड़–पौधे, सभी उन्हीं द्वारा सृजित किए जाते हैं।

आगे, यह बताते हुए कि परम सत् ही सभी जीवों का स्रोत है, उपनिषद् तीन सादृश्यों, यथा मकड़ी और जाल, पृथ्वी और उसके उत्पाद्य, मानव शरीर और उसके अंग का उदाहरण प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार जाल का निमित्त तथा उपादान कारण मकड़ी है, उसी प्रकार ब्रह्म ब्रह्माण्ड के कारण–तत्व रूप में बौद्धिक तथा भौतिक (निमित्त और उपादान) दोनों कारण हैं। पृथ्वी एक कारण है जो विभिन्न प्रकार के पौधों व पेड़ों को जन्म देती है। मानव शरीर, जिसे सजीव तथा सचेत माना जाता है, निष्क्रिय बाल तथा नाखून को जन्म देता है। जब इन्हें काटा जाता है तो किसी प्रकार की पीड़ा का अनुभव नहीं होता है। जिस प्रकार अकेला चेतन ब्रह्म विभिन्न (अचेतन) कार्यों को उत्पन्न करता है उसी प्रकार चेतना निष्क्रिय भौतिक जगत् को उत्पन्न करती है।

ब्रह्माण्ड की अभिव्यक्ति जगत् की विविधता से पूर्व स्वयं ब्रह्म में संभाव्यता के रूप में विद्यमान थी। ठीक उस बीज के समान जिसमें भविष्य में पेड़ बनने की सम्भावना रहती है।

ब्रह्म ने विश्व की परिकल्पना, तपस; यह ज्ञान की विश्व का सृजन किस रूप में और कैसे किया जाए, के रूप में की थी। सृजन की अभिव्यक्ति फूले हुए बीज के रूप में की गई। अंकुरित होने से पहले बीज थोड़ा फूल जाता है जो उसकी अभिव्यक्ति की संभाव्यता को दर्शाता है। सर्वप्रथम सूक्ष्म जगत् का सृजन हुआ। सूक्ष्म जगत् की तुलना सूक्ष्म अंकुर से की जा सकती है। सब ग्रह एवं पंच भूत–आकाश, अग्नि, वायु, जल तथा पृथ्वी–से मिलकर प्रत्यक्ष स्थूल जगत् की रचना हुई ।

8.8 ब्रह्म की प्रकृति

परा तथ अपरा विद्या दोनों में ब्रह्म को सर्वव्यापी सिद्धांत के रूप में परिभाषित किया गया है। ब्रह्म की विशेषता में उसे स्वनिर्मित तथा अन्य सभी वस्तुओं से भिन्न होना ब्रह्म का गुण बताया गया है। ब्रह्म स्वरूपहीन, अजन्मा, सर्वव्यापी, शरीर के हृदय में निवास करने वाला, अन्दर एवं बाहर विद्यमान रहने वाला तत्व है। वस्तुओं के नाम, रूप तथा क्रियाएं ब्रह्म के रूप हैं और ये तत्वहीन हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ब्रह्म का शरीर माना गया है। ब्रह्माण्ड तथा मानव शरीर उत्पत्ति के स्तर पर एक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। जीव, जानवर, पक्षी तथा अन्य प्राणियों का जन्म उत्पत्ति की विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा ईश्वर से होता है। ब्रह्म महान है और सभी का सहायक है। सभी जीव–जन्तु, जो चलते हैं और श्वास लेते हैं, ब्रह्म में लीन हैं। स्थूल तथा सूक्ष्मरूप तथा रूपहीन सभी केवल ब्रह्म हैं। ब्रह्म ही सत्, अस्तित्व तथा चित् अर्थात् ज्ञान है। सत्–चित् सम्पूर्ण जगत् का मूल है। सभी संसार इस शाश्वत ब्रह्म से उसके गुणों के रूप में सृजित हुए हैं। बाह्य ध्वनियां तथा मन के प्राण ब्रह्म की अभिव्यक्तियां हैं। लौकिक, अलौकिक तथा इनके बीच का संसार, सभी कुछ ब्रह्म पर आधारित हैं। आंतरिक संसार तथा मन, प्राण तथा इन्द्रियां सबके सृजन का आधार ब्रह्म है।

मूलतः आत्म सभी बाधाओं से मुक्त और शाश्वत है। यह व्यक्ति जिसका मन तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण है तथा इस तथ्य का संगत ज्ञान है कि सत्य क्या है और ब्रह्म क्या है, यह आत्मज्ञान प्राप्त करने में सक्षम है। कोई व्यक्ति जिसका मन अशुद्ध है और उसका ध्यान भौतिक जगत् से बाधित है, यह ब्रह्म का अनुभव नहीं कर सकता है।

चेतना को शरीर के भाग या उत्पाद के रूप में नहीं समझा जा सकता और न ही इसे शरीर द्वारा सीमित किया जा सकता है। आत्मा शरीर की मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहती है। किन्तु शरीर के बिना चेतना को नहीं देखा जा सकता। प्रत्येक शरीर में मूल तथा प्रतिबिम्बित चेतना होती है और इन्हें एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। मूल चेतना सभी वस्तुओं में व्याप्त है। प्रतिबिम्बित चेतना को अहंकार या शरीर चेतना के रूप में जाना जाता है। इनकी संख्या शरीरों की संख्या के बराबर होती है। यह शरीर–दर–शरीर और यहाँ तकि कि एक ही शरीर में परिवर्तित भी होती है। चेतना की दो अभिव्यक्तियों की तुलना एक पेड़ पर बैठे समान प्रजाति के दो पक्षियों से की जाती है। निचली डाल पर बैठा पक्षी मीठे और कड़वे फल खाता है। उपर वाली डाल पर बैठा पक्षी केवल उसे देखता है। शरीर चेतना, जीवात्मा फलों का रस प्राप्त करता है जबकि साक्षी चेतना, परमात्मा उसे देखता रहता है। यह पेड़ मन शरीर जटिलता है और फल विभिन्न क्रियाओं के परिणाम हैं जो सुख तथा दुखः प्रदान करते हैं।

बोध प्रश्न 1

ध्यातव्यः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1. वेदों के विभिन्न भागों के बारे में टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. ब्रह्म की प्रकृति का वर्णन प्रस्तुत करें।

.....

.....

.....

.....

.....

8.9 आत्मा की प्रकृति

आत्मा को सिद्धांततः साक्षी माना गया है। आत्मा केवल एक है यद्यपि विचार अनेक हैं। चेतना, जो कि जागरुक है, विचारों को स्वयं नियंत्रित करती है। विचार जागरुकता नहीं है, परन्तु इनका ज्ञान जागरुक स्थिति में ही होता है। जिस प्रकार हृदय शरीर का केन्द्र है जहाँ से सभी तंत्रिकायें उत्पन्न होती हैं और सम्पूर्ण शरीर में फैल जाती हैं उसी प्रकार मन हृदय में निवास करता है और मन में विचार के साथ–साथ जागरुकता भी उत्पन्न होती है जिसे आत्मा साक्षी भाव से देखती है। आत्मा चेतना के तीन स्तरों का मूक साक्षी है। हृदय महत्वपूर्ण जैविक केन्द्र है। अनेक क्षमताएं तथा गुण हृदय में केन्द्रित होते हैं।

ज्ञानचक्षुओं के माध्यम से सक्षम तथा शुद्ध सत्व वाला व्यक्ति साक्षी चैतन्य को पहचान लेता है। ठीक उसी प्रकार जैसे इन्द्रियां प्रकाश की निरंतर उपस्थिति में वस्तु को पहचान लेती है। मन अन्य स्रोत जैसे कि जागरूकता के प्रकाश पर निर्भर करता है। चैतन्य अन्य सभी प्रकाशों को प्रज्ज्वलित करने वाले सभी प्रकाशों का प्रकाश है। चैतन्य का यह प्रकाश मन में स्थित है। ब्रह्म यह साक्षी–चैतन्य है जहाँ न सूर्य चमकता है न ही चांद, न तारे, न ही बिजली और अग्नि चमकती है। किन्तु जब चेतनारूपी सूर्य चमकता है तो उसके प्रकाश से सब कुछ चमकता हैं केवल उसके ही द्वारा सभी प्रकाश प्रज्ज्वलित हो उठते हैं। (2. 2.10)। इसी प्रकार, आत्मा सभी को प्रकाशित करती है किन्तु स्वयं किसी से प्रकाशमान नहीं होती। ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन आत्मा को प्रकाशित नहीं कर सकते किन्तु आत्मा सभी को प्रकाशित कर सकती है। इन्द्रियाँ आत्मा से प्रकाश प्राप्त करके बाहरी वस्तुओं को प्रकाशमय करती हैं। ''मैं, आत्मा,'' सचेत जीव हूँ और सभी दूसरी वस्तु सचेत नहीं है'', श्लोक 2.2.11 का यही अर्थ है।

8.10 जीव तथा ब्रह्म की तादात्म्यता

जीवात्मा को परमात्मा के समान य उसी के रूप में परिभाषित किया गया है। इसकी समानता के लिए तीर और कमान का उदाहरण दिया गया है। तीर जीवात्मा है और लक्ष्य ब्रह्म। धार्मिक ग्रंथों की तुलना कमान से की गई है। शिक्षक तीर, कमान तथा लक्ष्य तीनों के मध्य संगतता बनाने का काम करता है। साधना का अभ्यास तीर को पैना करने के समान है ताकि उसे सीधा रखा जा सके और प्रत्यंचा को खींचकर लक्ष्य को भेदा जा सके। तीर को सीधे कमान पर रखने को 'अर्जयम्' कहा जाता है। यह विचारों, वाणी तथा क्रियाओं में निरन्तरता के समान है। प्रत्यंचा को वापस खींचना अन्तर्मन की ओर जाना है। तीर को पैना करना मन के माध्यम से बुद्धि को तेज करने के समान है। तीर को छोड़े जाने तक ध्यान को लक्ष्य की ओर केन्द्रित करना लक्ष्य में लीन होने और ब्रह्म से पृथक होने के व्यथित विचार को अलग रखने के लिए है। जब तीर लक्ष्य में लीन हो जाता है तो व्यक्ति अपने उद्देश्य में सफल हो जात है। इसी प्रकार, शिष्य ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ध्यान करता है। यह ध्यान के पश्चात् सफलता या फल आत्म साक्षात्कार कर लेता है। आत्मा दोनों चेतनाओं का मिश्रण है। जब जीव उच्चतर चैतन्य पर पहुंच जाता है तो यहां मोक्ष का बोध होता है। ब्रह्म में स्वरूप तथा तटस्थ लक्षण दोनों ही हैं। व्यक्तिगत स्तर पर यह एक साक्षी है तथा सांसारिक स्तर पर यह ब्रह्म है।

8.11 ब्रह्म की अनुभूति के साधन

उपनिषद् जिज्ञासुओं को यह जानने के लिए प्रेरित करते हैं कि ब्रह्म सभी की आत्मा है। ब्रह्म के अतिरिक्त कोई दूसरा शब्द नहीं है। गुरु कहते हैं कि 'यह आत्म–ज्ञान है– शाश्वत को प्राप्त करने के लिए, संसार के इस महासागर को पार करने के लिए, आत्मा तथा अन्य शब्दों का परित्याग किया जाना आवश्यक है'। जीवन का लक्ष्य ब्रह्म को जानना है। ब्रह्म हृदय के समीप है तथा हृदय के अन्दर गतिमान रहता है। ब्रह्म की अनुभूति के लिए सुनना (श्रवणम्), मनन (मननम्), निदिध्यासनम् क्रियाओं को किया जाना आवश्यक है।

रचना ब्रह्म की महिमा है तथा यह महिमा रचनाय विभूति में भी परिलक्षित होती है। ब्रह्म, जो शुद्ध आशीष तथा शाश्वत है, की पहचान शरीर के मंदिर, हृदय में चेतना के रूप में होती है। इस प्रकार शाश्वत आत्मा को देखा जाता है तथा उसकी पूजा की जाती है। यहाँ शरीर की तुलना एक मंदिर से की गई है तथा हृदय पवित्रों का पवित्र स्थल, गर्भगृह है। इसमें आत्मा वास करती है और जीवात्मा कहलाती है। आत्मा सर्वआच्छादक है। शरीर यह अनुभूति का माध्यम है, जहाँ आत्मा स्पष्टरूप से प्रकाशित होती है। (2.2.8)।

8.12 आत्मानुभूति के साधन

सत्यवादिता, असत्य बोलने से बचना, तपस्या, तप, लैंगिक शुद्धता, ब्रह्मचर्य, शास्त्रों तथा गुरु के माध्यम से उचित ज्ञान (सन्यक् ज्ञान) आदि आत्मानुभूति के साधन हैं। आत्म–अवलोकन तभी फलदायी होता है जब मन अशुद्धियों से मुक्त होता है। सत्य बोलना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। महत्वपूर्ण उक्ति – 'सत्यमेव जयते' स्पष्ट रूप से सदैव सत्य की जीत होना

बताती है (3.1.2–6)। शुक्ल गति के माध्यम से मोक्ष तथा ब्रह्मलोक की प्राप्ति के लिए सत्य बोलना अत्यंत आवश्यक है। ध्यान का यह मूलभूत सिद्धांत है। इस ज्ञान का सार यह है कि बिना सापेक्ष सत्य के निरपेक्ष सत्य ब्रह्म की प्राप्ति नहीं की जा सकती। सूक्ष्म तत्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तीक्ष्ण बुद्धि आवश्यक है। आत्मा की प्रकृति अनन्त, असीम, स्व–प्रमाणित, सर्वाधिक सूक्ष्म, दूर तथा समीप, सत् व चित् है। आत्मा के इस सूक्ष्म तत्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तीक्ष्ण बुद्धि की आवश्यकता होती है।

ब्रह्म को कौन प्रकट कर सकता है और कौन नहीं, इसका वर्णन उपनिषद् में है। नेत्र, शब्द ब्रह्म को प्रकट नहीं कर सकते हैं। इंद्रियां आत्मा के सूक्ष्म तत्व को नहीं पहचान पाती हैं। तपस्या, अनुष्ठान तथा अन्य क्रियाएं भी ब्रह्म को जानने में सहायक नहीं होते हैं। ये क्रियाएं शुद्धता तथा सूक्ष्मता के प्रति मन तथा इंद्रियों को तैयार करने में सहायक होती हैं। आत्मा का ज्ञान केवल श्रुति द्वारा ही प्राप्त होता है। धार्मिक ग्रंथों द्वारा प्रदान की गई शिक्षा आत्मासात् करने के लिए मन उपयुक्त तथा पूर्णतः तैयार होना चाहिए। इच्छाओं तथा अनिच्छा से मुक्त तथा पूर्णतः परिशुद्ध तथ सूक्ष्मता के लिए तैयार मन ही अविभाज्य, शुद्ध तथा सूक्ष्म ब्रह्म को जान सकता है। सूक्ष्म मन ही सूक्ष्म ब्रह्म को पहचान सकता है।

आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति महिमायुक्त हो जाता है क्योंकि उसने सम्पूर्ण सृष्टि के आधार तत्व के रूप में असीम ब्रह्म को पहचान लिया है और यह जानता है कि यह असीम ब्रह्म है। ज्ञानी बिना किसी भौतिक सुख प्राप्ति की इच्छा के उसकी पूजा करता है और यह अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। ज्ञानी इच्छुक व्यक्तियों को सुव्यवस्थित ढंग से आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करता है। यह ज्ञान अंततः व्यक्ति को मोक्ष की ओर ले जाता है। आत्म ज्ञान पुनर्जन्म को नष्ट करके व्यक्ति को मोक्ष प्रदान करता है। इच्छाएं व्यक्ति की सभी प्रकार की क्रियाओं की उत्पत्ति का स्रोत हैं। ये क्रियाऐं व्यक्ति का चरित्र निर्धारित करती हैं और यह व्यक्ति में मृत्यु के समय जीवन के प्रति आसक्ति, जिससे अगले जन्म का निर्धारण होता है, उत्पन्न करता है। एक ज्ञानी के लिए पूरी करने को कोई इच्छाएं नहीं होतीं तथा यह इच्छा से मुक्ति व्यक्ति को पुनर्जन्म से मोक्ष की ओर ले जाती है।

आत्मानुभूति के लिए धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन, बुद्धि तथा अवधारण शक्ति के साथ–साथ आत्मा को जानने तथा पहचानने की प्रबल इच्छा की भी आवश्यकता होती है। इसी के साथ व्यक्ति में पूर्ण मुक्ति की परम इच्छा, उद्देश्य को प्राप्त करने की तीव्र उत्कंठा तथा ज्वलंत इच्छा व इसे प्राप्त करने के लिए सब कुछ त्याग करने की तत्परता का होना आवश्यक होता है। परमात्मा सच्चे प्रार्थी को ही ज्ञान प्रदान करता है। मोक्ष वास्तव में प्राप्त किये जाने वाला तत्व नहीं है क्योंकि यह पहले से विद्यमान है। आत्मा की वास्तविक प्रकृति को समझने के लिए अज्ञानता को दूर करना होता है। इच्छा–शक्ति, सचेतनता, संयम तथा दृढ़निश्चय और भौतिक सुख से अलगाव मोक्ष प्राप्ति के लिए चार पात्रताएं हैं।

इस आत्म–ज्ञान का लाभ यह है कि इससे मनुष्य की अज्ञानता नष्ट होती है। जीव तथा जगत् तथा ईश्वर के अर्थ का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है तथा अन्ततः कर्म, पाप व पुण्य के जाल, जिसके कारण जन्म व मृत्यु का चक्र बना रहता है, से उसे मुक्ति मिल जाती है। आत्म–ज्ञान से दो अवस्थाओं में मुक्ति अर्थात् जीवन–मुक्ति और विदेह मुक्ति हो जाती है। शरीर में रहते हुए मुक्ति जीवन–मुक्ति है तथा मृत्यु पर या मृत्यु के पश्चात प्राप्त मुक्ति विदेह मुक्ति कहलाती है। इस प्रक्रिया की विभिन्न अवस्थाएं होती हैं। प्रक्रिया की शुरूआत इस तथ्य के ज्ञान से होती है कि आध्यात्मिक ज्ञान ही परम ज्ञान है तथा विमुक्त होना, शांत रहना, ज्ञान प्राप्त करना, जीवन मुक्ति को समझना व प्राप्त करना, निरन्तर ज्ञान

प्राप्ति की प्रक्रिया जारी रखना और अन्ततः सर्व–व्याप्त ब्रह्म के साथ विलय हो जाना मुक्ति की आवश्यक शर्तें हैं। जीवन मुक्ति की अनिवार्य विशेषताएं इस तरह हैं, यथा तृप्त–ज्ञान से संतुष्टि, क्रियात्मानः – जिसे आत्म अनुभूति हो गई है, वीतरागी– अनुराग से विमुक्त, सर्वज्ञ/सर्वव्यापी, धीर–ज्ञानी।

एक ज्ञानी बनने के लिए मनुष्य को मन की शुद्धता, मन के संतुलन तथा समर्पित ज्ञान–प्राप्तकर्ता होना पड़ता है। सम्पूर्ण में व्यक्तिगत आत्मा के विलय की तुलना चांद के पंद्रह भाग से की गई है। कार्यकारण नियम में बंधा सूक्ष्म शरीर एक तत्व में विलीन हो जाता है। तीन प्रकार के कर्मय संचित, आगामी तथा प्रारब्ध विलुप्त होकर ईश्वर में लीन हो जाते हैं। इसी तथ्य का वर्णन करने के लिए महासागर में नदियों के विलय का दृष्टांत प्रस्तुत किया गया है। हालांकि, नदियां भिन्न–भिन्न नामों, प्रकारों तथा आकारों की होती हैं किन्तु अंत में महासागर में मिल कर यह केवल पानी बन जाती हैं। इसी प्रकार जीव हालांकि भिन्न नाम व प्रकार के होते हैं किन्तु अन्ततः अनिवार्य रूप से एक तत्व (ब्रह्म) में लीन हो जाते हैं।

बोध प्रश्न 2

ध्यातव्यः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1. जीवात्मा और परमात्मा के मध्य क्या सम्बन्ध है?

.....

.....

.....

.....

.....

2. ब्रह्मविद्या के लिए क्या तैयारियां आवश्यक हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

8.13 सारांश

उपनिषद् के उपदेशों का मुख्य उद्देश्य जानने योग्य हर तत्व के ज्ञान की प्राप्ति की लिप्सा को पूरा करना है। उपनिषद् के अनुसार जिसका अस्तित्व है उसे नाम दिया जा सकता है एवं जाना जा सकता है। जो भी सत है, वह जानने योग्य है। *मुण्डक उपनिषद्* ज्ञान की

निरन्तर खोज को पूरा करता है। यह बताता है कि सभी प्रकार के ज्ञान की खोज ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के साथ शांत एवं परिपूर्ण हो जाती है। जीवन के असंख्य उद्देश्यों में से मानव को सत् का सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त करने का विकल्प दिया गया है। यह सत् जिसको जानने के बाद प्रत्येक जाना जा सकने वाला तत्व ज्ञात हो जाता है।

मुण्डक उपनिषद् सम्पूर्ण ज्ञान को परा और अपरा, उच्चतर व निम्नतर रूप में वर्गीकृत करता है। अपरा ज्ञान को परिवर्तनशीलता के सम्बन्ध में सकारात्मक ज्ञान के रूप में दर्शाया गया है। सभी प्रकार के विज्ञान, कला, साहित्य, राजनीति तथा अर्थषास्त्र इसी श्रेणी में आते हैं। वैदिक अनुष्ठानों तथा इनसे संबंधित तत्वों का ज्ञान अपरा के अन्तर्गत् आते हैं। इससे एक ज्ञान परा के रूप में उद्घोषित होता है। यह ज्ञान कि सभी नश्वर वस्तुओं का आधार एक अनश्वर एवं परिवर्तन सत् हैं, परा ज्ञान कहलाता है। उपनिषद् पहले अनुष्ठान क्रियाओं के लाभों के बारे में बताता है और फिर इसके दूसरे पक्ष की ओर अग्रसर होता है। अपरा विद्या की सीमितता का उल्लेख करने के पश्चात् उपनिषद् परा विद्या की प्रकृति का वर्णन करता है। उपनिषद् के अनुसार परिवर्तन से तात्पर्य भौतिक ज्ञान से आध्यात्मिक ज्ञान में परिवर्तन तथा असत् से सत् में परिवर्तन से है।

ब्रह्म जगत् का भौतिक तथा बौद्धिक अर्थात् निमित्त तथा उपादान दोनों कारण है। ब्रह्म एक है तथा जगत् अनेक हैं। चूंकि इनका सार–तत्व समान है किन्तु निस्सार तत्व जैसे रूप तथा नाम भिन्न हैं। जगत् बिना ब्रह्म के स्वयं को व्यक्त नहीं कर सकता तथा अन्ततः यह वापस ब्रह्म में लीन हो जाता है। अन्तिम अध्याय में जीवात्मा तथा परमात्मा के बीच तादात्म्यता की पहचान का वर्णन किया गया है तथा इस एकता हो अनुभूत करने के लिए आधारभूत व्यावहारिक अनुशासनों का वर्णन किया गया है तथा इस एकता को अनुभूत करने के लिए आधारभूत व्यावहारिक अनुशासनों को वर्णन किया गया है। इस प्रकार की गई अनुभूति से उत्पन्न मुक्ति को जीवन मुक्ति तथा विदेह मुक्त कहा गया है। चैतन्य साक्षी को शरीर के चैतन्य में विद्यमान अहम् के रूप में देखा गया है। उपनिषद् जीव तथा ब्रह्म को एक इकाई के रूप में प्रतिपादित करता है। *मुण्डक उपनिषद्* में ब्रह्म तथा आत्मा की एकरूपता को बहुत अच्छे ढंग से समझाया गया है। परमात्मा, अर्थात् ब्रह्म में कोई अशुद्ध ता नहीं है तथा यह अविभाजित और अखण्डित है। ब्रह्म का ज्ञाता स्वयं ब्रह्म हो जाता है। अज्ञानता की समाप्ति के पश्चात मानव इस तथ्य को भली भांति जान लेता है कि मैं ही ब्रह्म हूँ। यहां पर 'मैं' किसी दूसरी वस्तु (ब्रह्म) में परिवर्तित नहीं होता बल्कि उसे स्वयं की वास्तविक प्रकृति, ब्रह्म के साथ एकत्व, का ज्ञान हो जाता है। वास्तव में, प्रत्येक आत्म ब्रह्म ही होता है किन्तु यह इस ज्ञान से अनभिज्ञ रहता है। ज्ञान इस अज्ञान को हटा कर ब्रह्म अनुभूति को सम्भव बनाता है।

निष्कर्षतः, उपनिषद् में बताया गया है कि यह उपदेश हजारों वर्ष पूर्व गुरु अंगिरस ने महर्षि शौनक को दिए थे। हालांकि ये उपदेश पुरातन हैं किन्तु सत्य की खोज करने वालों के लिए ये आज भी संगत तथा लाभप्रद हैं।

8.14 कुंजी शब्द

मिथ्या : संस्कृत शब्द मिथ्या का अर्थ है – असत्। उपनिषदों में मिथ्या शब्द का प्रयोग जगत् के लिए किया गया है।

शास्त्र : संस्कृत में शास्त्र का अर्थ उपदेश, अनुदेश या निर्देश देना है। उदाहरण के लिए, तर्कशास्त्र तर्क और तर्कणा, वाद–विवाद का विज्ञान है तथा विवाद की यह कला है जो ज्ञान की प्रकृति तथा स्रोत तथा उसी वैधता का विश्लेषण करती है।

8.15 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

मेरसियर, जीन ल. एलु. *फ्रोम द उपनिषद्स टु ऑरोबिन्दो.* बेंगलोरः ऐशियन ट्रेडिंग कार्पोरेशन, 2001.

प्रसाद, रामानुज. *द उपनिषद्स.* देल्हीः पुस्तक महल, 2006.

राधाकृष्णन, एस. *द प्रिन्सिपल उपनिषद्स.* देल्हीः ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1953.

सिंह, बलबीर. *द फिलोसॉफी ऑफ उपनिषद्स.* न्यू देल्हीः अरनोल्ड– हीनमेन, 1983.

हिन्दी अध्ययन सामग्री

मुण्डकोपनिषद्, शांकरभाष्य सहित. गोरखपुरः गीताप्रेस, विक्रम सन्वत् 2062.

8.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. अपरा विद्या छः शाखाओं सहित चार वेदों यथा ऋक्, यजुर्, साम तथा अथर्व वेदों का प्रथम भाग है। इनका ज्ञान भौतिक लाभों को प्राप्त करने के लिए है। भौतिक जगत् का सम्पूर्ण ज्ञान अपरा विद्या, भौतिक पदार्थों का विज्ञान, के अन्तर्गत् आता है। वेदों का कर्म खण्ड मुख्य रूप से विभिन्न भौतिक तथा वस्तुनिष्ठ तत्वों का विज्ञान है। वेदों का उपासना खण्ड मानसिक क्रियाओं, जैसे ध्यान से सम्बन्धित है। ये दोनों शारीरिक तथा मानसिक क्रियाएं और इनसे प्राप्त व इनके स्वयं के ज्ञान अपरा विद्या के अन्तर्गत् आते हैं। इनका ज्ञान व्यक्ति को क्षणिक भौतिक जगत् की ओर ले जाता है। प्रत्येक अनुष्ठान व्यक्ति को उस अनुष्ठान का लाभ प्रदान करता है। उपनिषद् मनीषियों के अनुसार यदि मन्त्रों में उल्लेखित अनुष्ठान कार्य पूर्ण निष्ठा से किये जाये तो उनसे उत्पन्न फल सत्य होते हैं।

2. परा तथा अपरा विद्या दोनों में ब्रह्म को सर्वव्यापी सिद्धांत के रूप में परिभाषित किया गया है। ब्रह्म की विशेषता में उसे स्वनिर्मित तथा अन्य सभी वस्तुओं से भिन्न माना गया है। ब्रह्म स्वरूपहीन, अजन्मा, सर्वव्यापी, शरीर के हृदय में निवास, अन्दर एवं बाहर विद्यमान रहने वाला शाश्वत तत्व है। वस्तुओं के नाम, रूप तथा क्रिया ब्रह्म के रूप है और यह स्वयं तत्वहीन हैं। यह बीज रूप में अव्यक्त ढंग से सम्भावित रूप में उसी प्रकार पाये जाते हैं जैसे कि मिट्टी का ढेर या स्वर्ण अव्यक्त रूप से सभी बर्तनों और आभूषणों के सभी नाम एवं रूप के साथ पाये जाते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ब्रह्म का शरीर माना जाता है। ब्रह्माण्ड तथा मानव शरीर उत्पत्ति के स्तर

पर एक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। जीव, जानवर, पक्षी तथा अन्य प्राणियों का जन्म उत्पत्ति की विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा ईश्वर से ही होता है। यह महान और सभी का सहायक है। सभी जीव जन्तु जो चलते हैं और श्वास लेते हैं ब्रह्म में लीन हैं। स्थूल तथा सूक्ष्म, रूप तथा रूपहीन सभी केवल ब्रह्म हैं। ब्रह्म ही सत्, अस्तित्व तथा चित, ज्ञान है। सत्–चित् सम्पूर्ण जगत् का मूल है। ब्रह्म को प्रकाश की किरणों के समान माना गया है। सभी संसार इस शाश्वत ब्रह्म से उसके गुणों के रूप में सृजित हुए हैं। ध्वनियां तथा मन के प्राण ब्रह्म की अभिव्यक्तियां हैं। लौकिक, अलौकिक तथा इनके बीच का सभी कुछ सृजन ब्रह्म पर आधारित है। आंतरिक संसार तथा मन, प्राण तथा इन्द्रियां आदि सबके सृजन का आधार ब्रह्म है।

बोध प्रश्न 2

1. जीवात्मा को परमात्मा के समान व उसी के रूप में परिभाषित किया गया है। इसकी समानता के लिए तीर और कमान का उदाहरण दिया गया है। तीर जीवात्मा है और लक्ष्य ब्रह्म। धार्मिक ग्रंथों की तुलना कमान से की गई है। शिक्षक तीर कमान तथा लक्ष्य तीनों के मध्य एकता बनाने का काम करता है। साधना का अभ्यास तीर को पैना करने के समान है ताकि उसे सीधा रखा जा सके और प्रत्यंचा को खींचकर लक्ष्य को भेदा जा सके। तीर को सीधे कमान पर रखने को 'अर्जयम्' कहा जाता है। यह विचारों, वाणी तथा क्रियाओं में निरन्तरता के समान है। प्रत्यंचा को वापस खींचना अन्तर्मन की ओर जाना है। तीर को पैना करना मन के माध्यम से बुद्धि को तेज करने के समान होता है। तीर को छोड़े जाने तक ध्यान को लक्ष्य की ओर केन्द्रित करना लक्ष्य में लीन होने और ब्रह्म से पृथक होने के व्यथित विचार को अलग रखने के लिए है। जब तीर लक्ष्य में लीन हो जाता है तो व्यक्ति अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है। इसी प्रकार प्रशिक्षु, जो ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ध्यान करता है, ध्यान के पश्चात् सफलता या फल प्राप्त कर लेता है। आत्मा दोनों चेतनाओं का मिश्रण है। जब जीव उच्चतर चेतना पर पहुंच जाता है तो यहां मोक्ष का बोध होता है। ब्रह्म में स्वरूप तथा तटस्थ लक्षण, दोनों ही हैं। व्यक्तिगत स्तर पर यह एक साक्षी है तथा सांसारिक स्तर पर यह ब्रह्म हैं।

2. सत्यवादिता, असत्य बोलने से बचना, तपस्या, तप, लैंगिक शुद्धता, ब्रह्मचर्य, शास्त्रों तथा गुरु के माध्यम से उचित ज्ञान, सम्यक् ज्ञान आदि आत्मानुभूति की अनिवार्य शर्तें हैं। आत्मावलोकन तभी फलदायी होता है जब मन अशुद्धियों से मुक्त हो जाता है। सत्य बोलना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। महत्वपूर्ण उक्ति 'सत्यमेव जयते' स्पष्टरूप से सदैव सत्य की जीत होना बताती है। शुक्ल गति के माध्यम से मोक्ष तथा ब्रह्मलोक की प्राप्ति के लिए सत्य बोलना अत्यंत आवश्यक है। ध्यान का यह मूलभूत सिद्धांत है। इस ज्ञान का सार यह है कि बिना सम्बद्ध सापेक्ष सत्य के, निरपेक्ष सत्य, ब्रह्म की प्राप्ति नहीं की जा सकती। सूक्ष्म तत्वों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तीक्ष्ण बुद्धि आवश्यक है। आत्मा की प्रकृति अनन्त, असीम, स्व–प्रमाणित, सर्वाधिक सूक्ष्म, दूर तथा समीप, सत् व चित् है। आत्मा के इस सूक्ष्म तत्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तीक्ष्ण बुद्धि की आवश्यकता होती है।

ब्रह्म का ज्ञान किस तरह किया जा सकता है और किस तरह नहीं, इसका वर्णन उपनिषद् में है। नेत्र और शब्द ब्रह्म को व्यक्त नहीं कर सकते हैं। इन्द्रियां आत्मा के

सूक्ष्म तत्व को नहीं पहचान पाती है। तप, अनुष्ठान तथा अन्य क्रियाएं भी ब्रह्म को जानने में सहायक नहीं होती हैं। ये क्रियाएं शुद्धता तथा सूक्ष्मता के प्रति मन तथा इन्द्रियों को तैयार करने में सहायक होती हैं। आत्मा का ज्ञान केवल श्रुति द्वारा ही प्राप्त होता है। धार्मिक ग्रंथों द्वारा प्रदान की गई शिक्षा को आत्मसात करने के लिए मन उपयुक्त तथा पूर्णतः तैयार होना चाहिए। इच्छाओं तथा अनिच्छा से मुक्त तथा पूर्णतः परिशुद्ध तथा सूक्ष्मता के लिए तैयार मन ही अविभाज्य, शुद्ध तथा सूक्ष्म ब्रह्म को जान सकता है। सूक्ष्म मन ही सूक्ष्म ब्रह्म को जान सकता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 9 माण्डूक्य उपनिषद्[1]

रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 परिचय

9.2 अ उ म (ॐ) का प्रतिपादन

9.3 चेतना के नाम तथा अवस्थाएं

9.4 जाग्रत् अवस्था

9.5 स्वप्न अवस्था

9.6 सुषुप्ति अवस्था

9.7 तुरीय अवस्था

9.8 आत्म–अनुभूति

9.9 आत्म की विशेषताएं

9.10 ओउम और आत्म

9.11 सारांश

9.12 कुंजी शब्द

9.13 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

9.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

मानव के भीतर विद्यमान चेतना हर परिस्थिति में एक तथा समान रहती है। यद्यपि विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में चेतना की विभिन्न अवस्थाओं में अन्तर अनुभव किया जाता है। इन सभी अवस्थाओं में आत्म ही अनुभवकर्ता होता है। इस इकाई के अंत तक आप जान पाएंगें;

- माण्डूक्य उपनिषद् का सार। माण्डूक्य उपनिषद् चेतना के चार रूपों तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।
- रहस्यात्मक पद ओउम, जो भारत की धार्मिक एवं दार्शनिक परम्परा का प्रतीक है, का चिंतनशील विश्लेषण।

9.1 परिचय

माण्डूक्य उपनिषद् का सम्बन्ध *अथर्व वेद* से है। *माण्डूक्य उपनिषद्* नाम की व्युत्पत्ति मण्डूक्य ऋषि के नाम से हुई है। माण्डूक्य का शाब्दिक अर्थ है मेंढक। कथानुसार, भगवान

[1] डॉ जॉन पीटर, सें. एण्टोनीज महाविद्यालय, कोट्टागिरि, अनुवाद– डॉ. आर. एस. दूबा, दिल्ली

वरुण ने प्रणव या ओंकार के महत्व को उजागर करने के लिए मेंढक के रूप की कल्पना की और इसे (मकार को) परम ब्रह्म के एकमात्र नाम व प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया। *माण्डूक्य उपनिषद्* प्रधान उपनिषदों में सबसे छोटा है। इसमें केवल बारह छंद हैं। इसमें सम्पूर्ण वैदिक उपदेशों का सारतत्व समाविश्ट है। इस उपनिषद् की भाषा सुसंगत तथा संक्षिप्त रूप में है किन्तु अर्थ में व्यापक है। गौड़पाद ने इसी उपनिषद् पर कारिका नामक एक प्रसिद्ध टीका का लेखन किया। इसे अद्वैत वेदान्त का प्रथम सुव्यवस्थित प्रतिपादन माना जाता है। शंकर ने भी उपनिषद् तथा गौड़पाद की टीका दोनों पर भाष्य लिखा।

इस उपनिषद् के विश्लेषण में मानव चेतना की चार अवस्थाओं यथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय की सम्पूर्ण व्याख्या उपलब्ध है। मानव चेतना की इन चार अवस्थाओं की जांच की विशिष्ट पद्धति द्वारा उपनिषद् सत् की प्रकृति को उजागर करता है। आत्म को स्थूल वस्तुओं के अनुभवकर्ता (वैश्वानर), सूक्ष्म वस्तुओं के अनुभवकर्ता (तैजस) तथा अव्यक्त वस्तुनिष्ठता के अनुभवकर्ता (प्राज्ञ) तथा अद्वैत, अदृश्य और अवर्णनीय आत्म (तुरीय) के नामों से अभिहित किया गया है। माण्डूक्य उपनिषद् सत् पर ध्यान के लिए ओउम का चिह्न की चर्चा करता है जो परम सत्ता का बोध कराने में सहायक होता है। ओउम सभी शब्दों का समरूपी शब्द है। यह तीन ध्वनियों से बना है अ, उ, म, जिनके व्यापक दार्शनिक प्रभाव होते हैं जैसाकि उपनिषदों में व्याख्या की गई। यह उपनिषद् महावाक्य 'अयमात्मा ब्रह्म (यह आत्म ही ब्रह्म)' को प्रदर्शित करता है।

9.2 अ उ म (ॐ) का प्रतिपादन

माण्डूक्य उपनिषद्, सभी ध्वनियों, शब्दों तथा नामों के आधार के रूप में ओउम के सूक्ष्म अर्थ की व्याख्या करता है। ओउम अक्षर का अर्थ है, ''जो अक्षय या अमर है''। *माण्डूक्य उपनिषद्* ओउम, ब्रह्म तथा आत्मा की अवधारणा के लिए तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करता है। यह स्थापित करता है कि ये सब एक ही हैं। ओउम की प्रकृति तथा निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ब्रह्म की प्रकृति के समान मानी गई है। ओउम को ब्रह्म के प्रतीक के रूप में देखा गया है। यह भूत, वर्तमान तथा भविष्य के प्रकट विश्व के रूप में भी है। ओउम अक्षर को सर्वत्र माना गया है। 'अक्षरम् इदं सर्वम्।'

9.3 चेतना के नाम तथा अवस्थाएं

माण्डूक्य उपनिषद् में प्रत्येक क्षण के लिए आत्म को चेतना की अवस्था के अनुसार चार नामों यथा वैश्व, तैजस, प्राज्ञ तथा तुरीय के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये नाम चेतना की सम्बन्धित अवस्था को दर्शाते हैं। ये अवस्थाएं हैं– जाग्रत् अवस्था, स्वप्न अवस्था, सुषुप्ति अवस्था तथा आध्यात्मिक या अनुभवातीत (तुरीय) अवस्था। वैश्व नाम जाग्रत् अवस्था में आत्म को दिया गया है, जहाँ आत्म की जाग्रत् अवस्था को उसकी गतिविधियों के क्षेत्र तथा बाहरी वस्तुओं के बोध के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। चेतना की दूसरी अवस्था स्वप्न अवस्था है। इसके अन्तर्गत् आत्मा स्वप्न के क्षेत्र में क्रियाशील होती है। यह आन्तरिक तथा मानसिक तत्वों का बोध करती है और सूक्ष्म वस्तुओं का आनन्द लेती है। इस अवस्था में आत्म को तैजस नाम दिया गया है। तैजस आन्तरिक तथा मानसिक अवस्थाओं की चेतना है। चेतना की तीसरी अवस्था सुषुप्ति (गहरी निद्रा) की अवस्था है तथा इसके अनुभवकर्ता को प्राज्ञ नाम दिया गया है यहाँ अनुभवकर्ता सभी इच्छाओं से परे होता है। यह किसी

प्रकार की बाहरी तथा स्वप्न वस्तुओं का अनुभव करता है। इसे ज्ञान का भण्डार माना गया है, क्योंकि आत्म यहां स्वयं की अवस्था का साक्षी होता है। इसके बावजूद, चेतना की इस अवस्था को अस्थायी प्रकृति का माना गया है। अतः यह चेतना की अंतिम अवस्था नहीं है। अनुभवातीत चेतना अवस्था चौथी अवस्था है, जहाँ आत्म वास्तव में स्वयं में स्थापित हो जाता है और यहाँ उसे तुरीय कहा गया है।

9.4 जाग्रत् अवस्था

भौतिक जगत् समरूपी नियमों से बंधा हुआ है। यह सभी लोगों के लिए समान रूप से उपस्थिति रहता है। जाग्रत् अवस्था मानव के लिए एक सामान्य स्थिति है। प्रत्येक व्यक्ति जगत् का अनुभव वैसे ही करता है जैसा जगत् वास्तव में है। इसको लेकर कोई मतान्तर नहीं है। आत्म इन्द्रियानुभव तथा इच्छाओं के बंधन में बन्ध कर जाग्रत अवस्था में अपनी क्रियाएं करता है। जाग्रत् अवस्था के विषयों को वैश्व नाम दिया गया है। चेतना की इस अवस्था, आत्म का प्रथम चौथाई भाग है तथा यह वैश्वानर विषय, क्रिया क्षेत्र के अन्तर्गत् जाग्रत् अवस्था में रहता है। इस अवस्था में चतना बाहरी वस्तुओं से जुड़ती है तथा इसके सात अंग और उन्नीस मुंह होते हैं। सात अंगों की अवधारणा अग्निहोत्र यज्ञ से ली गई है। कहा गया है, 'स्वर्ग वस्तुतः वैश्वनार–आत्म है जिसकी आंख सूर्य है, वायु प्राण शक्ति है, अंतरिक्ष मध्य भाग है, जल मूत्राशय और पृथ्वी दो पैर हैं। आहवानीय अग्नि को उसका मुख माना गया है। इन सात अंगों को धारण करने वाला सप्तांग हैं।' आत्म के उन्नीस मुंह हैं। इनमें पांच बोध ज्ञानेन्द्रियां तथा पांच क्रिया अंग हैं। पांच प्राण शक्तियां तथा मन, बुद्धि, अहम् तथा मनस्तत्व हैं। अनुभव के प्रवेश द्वार होने के कारण इन्हें मुख माना गया है। चूंकि इन्हीं के प्रवेश द्वारों के माध्यम से वैश्वानर स्थूल वस्तुओं का भोग करता है इसलिए इसे स्थूल विषयों का भोग कर्ता कहा गया है। स्थूल वस्तुओं का रस जाग्रत् अवस्था में लिया जाता है। वैश्वानर अपने ध्यान को वास्तविक तथा भौतिक संसार की सतही वस्तुओं की ओर केन्द्रित करता है। *माण्डूक्य उपनिषद्* के अनुसार चेतना के बाह्य विषयों पर केन्द्रित होने से अज्ञानता का जन्म होता है। इसी अज्ञानता के वशीभूत हम कभी–कभी बाह्य वस्तुओं को ही वास्तविक आत्म समझने लगते हैं। इस अवस्था में चेतना स्वः पर केन्द्रित होने के स्थान पर बाहरी वस्तुओं पर केन्द्रित होती है।

बोध प्रश्न 1

ध्यातव्य : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1. चेतना की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. जाग्रत् अवस्था का वर्णन प्रस्तुत कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

9.5 स्वप्न अवस्था

स्वप्न अवस्था आत्मा की वह स्थिति है जब बाहरी इन्द्रियां तथा वस्तुऐं अपनी भौतिक विशेषताओं के साथ उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं रहती हैं, बल्कि मानसिक प्रतिबिम्ब के रूप में उपलब्ध रहती हैं। आत्म को यहां तैजस, प्रकाशमयी कहा गया है। आत्म तैजस इसलिए है क्योंकि अब यह सभी प्रकार के संज्ञानों का साक्षी मात्र है और इसलिए यह प्रकाशमयी प्रतीत होता है। यह जाग्रत् अनुभव द्वारा छोड़े गए पूर्व अनुभवों तथा प्रभावों पर आधारित मानसिक अवस्था का अनुभव करता है। जाग्रत् अवस्था की चेतना अनेक बाहरी माध्यमों से सम्बन्धित होती है तथा इन माध्यमों से सम्बद्ध होने के साथ–साथ यह बाहरी तत्वों में भी लिप्त हो जाती है। परिणामस्वरूप, यह मन में अनेक प्रभावों को छोड़ती है। यह सफेद कागज पर बने चित्रों में नजर आने वाले प्रभावों के समान है। यह जाग्रत् अवस्था के समान ही स्वप्न अवस्था में भी उपस्थित रहती है किन्तु किसी बाहरी माध्यम से सम्बद्ध हुए बिना। इंद्रियों की तुलना में मन आन्तरिक तत्व है। स्वप्न अवस्था में चेतना आन्तरिक मन में पड़े प्रभावों को रूप धारण करती है तथा आन्तरिक तथ्यों से भी अवगत रहती है। इस अवस्था में आत्म अपने स्वप्नों का संस्थार स्वयं निर्मित कर लेता है। स्वप्न अवस्था में अनुभूत सभी विषय आन्तरिक, सूक्ष्म तथा मानसिक होते हैं। ज्ञाता तथा ज्ञेय का द्वैत चेतना की इस दूसरी अवस्था में भी बना रहता है। स्वप्न अवस्था में तैजस अधिक स्वतंत्रता की अवस्था में रहता है, क्योंकि यहां आत्म जाग्रत् अवस्था के बाहरी वस्तुओं के अनुभव के स्थान पर अपने स्वयं के जगत् की कल्पना करता है। स्वप्न तत्व कुछ क्षणों के लिए आत्म को प्रसन्नता प्रदान करते हैं। इस अवस्था में आत्म अनुभूतिमूलक संसार से मुक्त होता है। तैजस यह पहलू है जहाँ गतिविधियों का क्षेत्र स्वप्न अवस्था है। चेतना आन्तरिक है, जिसके सात अंग तथा उन्नीस मुंह हैं। व्यक्ति सूक्ष्म वस्तुओं का भोग करता है। बाहरी विश्व भौतिक तत्वों पर निर्भर करता है। यह स्थूल बोध के प्रकारों का अनुभव करता है। चेतना की दूसरी अवस्था यथा स्वप्न अवस्था, में मात्र सूक्ष्म प्रभावों वाले अनुभावों की प्राप्ति की जाती है। इसलिए, इनसे प्राप्त रस भी सूक्ष्म होते हैं। जहाँ प्रथम अवस्था बहिर्गामी संचलन, बाहरी चेतना का जाग्रत् जीवन है वहीं दूसरी अवस्था चेतना का अन्तर्गामी स्वप्न जीवन है।

9.6 सुषुप्ति अवस्था

चेतना की अगली अवस्था सुषुप्ति अवस्था है। इसे प्राज्ञ कहते हैं तथा इसकी गतिविधियों का क्षेत्र सुषुप्ति (गहरी निद्रा) अवस्था में है। सुषुप्ति अवस्था में रहने वाले व्यक्ति को किसी सुखमूलक वस्तु की इच्छा नहीं होती है तथा वह कोई स्वप्न भी नहीं देखता है। यद्यपि

सुषुप्ति अवस्था ज्ञान की अवस्था है किन्तु यहाँ बाहरी और आन्तरिक विषयों का ज्ञान प्रसुप्तावस्था का ज्ञान होता है। जिस प्रकार अंधकार में अवबोधन सम्भव नहीं है, उसी प्रकार सुषुप्ति अवस्था में आन्तरिक या बाह्य किसी भी प्रकार का अवबोधन नहीं होता है। इस अवस्था में न ही कोई इच्छा होती, न ही कोई विचार उत्पन्न होता है। सुषुप्ति अवस्था में आत्म संप्रत्ययमूलक हो जाता है। अन्य दो अवस्थाओं में आत्म काल्पनिक तथ प्रत्यक्षमूलक रूपों में विद्यमान होता है। सुषुप्ति अवस्था, चेतना की अन्य दो अवस्थाओं यथा जाग्रत् तथा स्वप्न के बोध का प्रारम्भिक मार्ग है। सुषुप्ति में यथार्थ जगत् का ज्ञान शामिल नहीं होता है। बल्कि बाकि दो अवस्थाओं में जाग्रत् एवं स्वप्न में भी यथार्थ जगत् का ज्ञान नहीं होता। यहां प्रत्यक्षमूलक स्थूल तथ्यों की उपस्थिति और अनुपस्थिति होती है। सुषुप्ति अवस्था में आत्म की जो यथार्थ जगत् की अनभिज्ञता की अवस्था है, यह समान रूप से सभी तीन अवस्थाओं में विद्यमान रहती है। तथापि यह आत्म पहली दो अवस्थाओं से भिन्न है। निद्रा में सत्ता का कोई गलत प्रत्यक्ष नहीं होता बल्कि केवल इच्छा की अनुपस्थिति होती है। इस तथ्य के कारण अन्य दो अवस्थाएं सुषुप्ति से भिन्न हैं। इसे चित्तोन्मुख कहा जाता है क्योंकि यह स्वप्न तथा जाग्रत् अवस्थाओं के अनुभवों की चेतना का प्रवेशद्वार है। सुषुप्ति अवस्था वाले व्यक्ति को प्राज्ञ अर्थात उत्कृष्टता के स्तर पर सचेत कहा जाता है। अकेले उसमें ही भूतकाल तथा भविष्यकाल के सभी तत्वों का ज्ञान होता है। यहाँ तक कि सुषुप्ति अवस्था के समय भी यह प्राज्ञ सचेत कहलाता है। ऐसा पूर्व की अन्य दो अवस्थाओं में सचेत रहने के कारण है और अकेले उसके पास अविभाजित चेतना की विशिष्ट विशेषता विद्यमान रहती है। अन्य दो अवस्थाओं में विविध ज्ञान होता है।

सुषुप्ति अवस्था में आत्म को चेतना का पुंज भी कहा गया है क्योंकि इसमें विभेद का अभाव होता है। इस अवस्था में प्रत्येक वस्तु समरूपी हो जाती है क्योंकि हर वस्तु अंधकार में अविभेदीय बनकर पुंज के रूप में प्रतीत होती है। प्राज्ञ आनन्द से भरा होता है। वस्तुओं तथा अनुभव के रूप में चंचल मन की क्रियाओं में शामिल दुःख की अनुपस्थिति के कारण व्यापक आनन्द विद्यमान होता है। कोई भी व्यक्ति जो सभी व्यापारों से मुक्त रहता है, सुखी तथा आनन्द का अनुभव प्राप्त करने वाला माना जाता है। गहरी निंदा वाले व्यक्ति को भी आनन्द प्राप्त होता है। जिसकी अनुभूति यह इसी अवस्था में करता है। यह क्रियाशीलता से पूर्ण मुक्ति की अवस्था है। यह व्यक्ति, जो परमानन्द को प्राप्त करता है तथा जो स्वप्न और जाग्रत् अवस्थाओं के अनुभव का प्रवेशद्वार है, यह परमानन्द से भरपूर होता है यह स्वयं परमानन्द नहीं है बल्कि परमानन्द को भोगने वाला है।

सुषुप्ति अवस्था में आत्म परिवर्तनशील या अदृश्य नहीं होता है, क्योंकि सुषुप्ति अवस्था में व्यक्ति को यह बोध बना रहता है कि यह गहरी नींद में सोया। बाकी किसी अन्य तथ्य से यह अवगत नहीं होता है। यदि सुषुप्ति के दौरान आत्म अदृश्य हो जाएगा तो गहरी नींद का अनुभव सम्भव नहीं है। सुषुप्ति की यादों को स्थाई साक्षी चेतना के कारण ही एकत्र किया जा सकता है। आत्म इस अवस्था में भी परिवर्तित नहीं होता है। सुषुप्ति अवस्था की समाप्ति पर आत्म, स्वप्न तथा जाग्रत् अवस्थाओं में वापस आ जाता है। यहां तक कि आत्म किसी भी अवस्था में परिवर्तित नहीं होता है। चेतना की इन तीन अवस्थाओं में मात्र विभिन्न लक्षण आत्म पर अध्यारोपित हो जाते हैं। यह वही आत्म है जो चेतना की इन तीन अवस्थाओं में तथा चौथी अवस्था में यथावत विद्यमान रहता है। सुषुप्ति एक ऐसी अवस्था है जिसमें चेतना शान्त होती है तथा बाहरी तथा आन्तरिक तत्वों की अनुभूति नहीं करती है। तथापि सुषुप्ति अवस्था अपनी परिवर्तनशील प्रकृति के कारण परम अथवा अंतिम अवस्था नहीं है।

9.7 तुरीय अवस्था

चौथी अवस्था को तुरीय कहा गया है। यह शुद्ध चेतना, अनुभवातीत, नित्य और अद्वैत है। माण्डूक्य उपनिषद् इस अवस्था को सीधे इसके सकारात्मक गुणों के माध्यम से वर्णित नहीं करता। इस अवस्था का वर्णन निषेधात्मक पद्धति द्वारा किया गया है। तुरीय अवस्था क्या नहीं है, के वर्णन के माध्यम से तुरीय को जाना गया है। तुरीय को केवल सकारात्मक विवरण द्वारा ही नहीं बल्कि गुणों को नकारने के रूप में दर्शाया गया है। निषेधात्मक पद्धति के माध्यम से 'कुछ सकारात्मक रूप से' तुरीय को स्थापित किया गया है। तुरीय उस प्रत्येक विशेषता से वंचित है जिसका वर्णन 'सम्भव शब्दों' के माध्यम से किया जा सकता है। यह शब्दों के माध्यम से वर्णनीय नहीं है। तुरीय वह व्यवस्था है जो आंतरिक जगत्, बाहरी जगत् इन दोनों जगतों के प्रति सचेत नहीं है। यह चेतना का पुंज भी नहीं है। यह न तो चेतन है न ही अचेतन। यह अदृश्य तथा समस्त व्यावहारिक अनुभवों से परे है। सभी इन्द्रियों की पकड़ से परे, अननुमेय, अविचारणीय तथा अवर्णनीय है। वैध साक्ष्य केवल आत्म के विश्वास में निहित है जिसमें सभी तथ्य लुप्त हो जाते हैं। यह अपरिवर्तनीय, शुभ तथा अद्वैत है। यही आत्म है और इसका ज्ञान प्राप्त करना मानवता का परम लक्ष्य है।

तुरीय में सत्ता को विषय तथा वस्तु के भेद से परे जाना जाता है। इस अवस्था में आत्म को ईश्वरवादी उपाधियों जैसे सर्वज्ञाता, सर्वशक्तिमान आदि से नहीं समझा जा सकता। यहाँ ब्रह्म को ज्ञान तथा शक्ति धारण करने वाले के रूप में नहीं देखा जाता। यह शब्दों और विचारों के परे एक शुद्ध तत्व है। जब यह प्रज्ञा के गुणों सहित व्यक्तिगत भगवान के रूप में ईश्वर होता है तभी यह सर्वज्ञाता कहलाता है। हालांकि तीसरी तथा चौथी दोनों अवस्थाओं में वस्तुनिष्ठ चेतना अनुपस्थित रहती है, अपितु इस चेतना के बीज सुषुप्ति अवस्था में विद्यमान होते हैं तथा अनुभवातीत चेतना की अवस्था में ये बीज भी अनुपस्थित हो जाते हैं। सुषुप्ति अवस्था में आनुभविक चेतना अव्यक्त स्थिति में विद्यमान रहती है। तुरीय अवस्था तीनों अवस्थाओं के परे गैर–आनुभविक अवस्था है।

9.8 आत्म–अनुभूति

चौथी अवस्था (तुरीय) का ज्ञान चेतना की अन्य तीन अवस्थाओं के संलयन द्वारा प्राप्त होता है। आत्म वह है जो सभी अवस्थाओं में विद्यमान रहता है। यह सभी तथ्यात्मक सम्बन्धों से परे अपने निरपेक्ष वास्तविक रूप में रहता है। चौथी अवस्था उन तीन अवस्थाओं से भिन्न है। उन तीन अवस्थाओं में बाहरी तथा आंतरिक संसार की चेतना बनी रहती है। जिस प्रकार सांप की भ्रांति समाप्त होने के पश्चात् रस्सी की सही प्रकृति का ज्ञान होता है उसी प्रकार आत्म पहले की तीन अवस्थाओं की वास्तविक प्रकृति को समझते हुए तुरीय अवस्था में अवस्थित हो जाती है। जिस प्रकार रस्सी में सांप का भ्रम होता है उसी प्रकार अन्य अवस्थाओं में आत्म में आंतरिक तथा बाहरी जगत् की चेतना जैसे गुणों के होने का भ्रम होता है जब ऐसे गुणों के निषेध से उत्पन्न वैध ज्ञान के माध्यम से आत्म को जाना जाता है, तो दुःखमय व्यावहारिक जगत् की समाप्ति हो जाती है। ऐसी स्थिति में शुद्ध आत्म के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए ज्ञान के किसी अन्य माध्यम या किसी अन्य विज्ञान या विद्या की खोज की आवश्यकता नहीं पड़ती। तुरीय अवस्था की प्राप्ति के लिए अन्य तीन अवस्थाओं में आत्म के भ्रामक गुणों के निषेध की आवश्यकता होती है। भ्रमित सर्प ज्ञान के निरसन के साथ ही वास्तविक रस्सी का ज्ञान स्वतः ही हो जाता है। रस्सी तथा सांप

के विभेदक का ज्ञान इस भ्रामक ज्ञान के निरसन से ही सम्भव हो सकता है। तुरीयावस्था में ज्ञान का उपकरण कुछ और नहीं बल्कि असत्य ज्ञान के निषेध से उत्पन्न पैथ ज्ञातता ही है। आत्म की प्रकृति के इस असत्य ज्ञान को ही अन्य तीन अवस्थाओं में आत्म पर अध्यारोपित किया जाता है। यहाँ पर ज्ञाता, ज्ञात तथा ज्ञान के विभेद की समाप्ति के साथ ही सभी अवांछित गुण भी निरसित कर दिये जाते हैं।

9.9 आत्म की विशेषताएं

चेतना की तीन अवस्थाएं कुछ और नहीं बल्कि आत्म के अनुभव की विभिन्न अवस्थाएं हैं जिसे अवस्था–त्रयम कहते हैं। जाग्रत् अवस्था में अनुभवकर्त्ता भौतिक शरीर तथा इन्द्रियों के माध्यम से बाहरी जगत् का अनुभव करता है। बाहरी जगत् के सम्पर्क में आने से आत्म में दो घटनाएं घटित होती हैं। एक, बाह्य स्थूल जगत् (स्थूल प्रपंचों) का अनुभव। दूसरा, मन वासना के रूप में सभी अनुभवों का अलेखन तथा संग्रह। अनुभवकर्त्ता न केवल जगत् को अनुभव करता है बल्कि दृष्टान्ततः घटनाओं का ऑडियो वीडियो कैसेट की तरह अपने मन में आलेखन भी करता है। कैसेट केवल ध्वनि या कैसेट की तरह चित्रों को ही आलेखित कर सकती है तथा उसकी क्षमता भी सीमित होती है किन्तु कैसेट के विपरीत मन भौतिक जीवन के समस्त अनुभवों को आलेखित कर सकता है। स्वप्न अवस्था में जब बाहरी जगत् के साथ भौतिक शरीर तथा इन्द्रियों की सभी क्रियायें लुप्त हो जाती हैं तो अनुभवकर्त्ता भौतिक शरीर के साथ अपने तादात्म्य के अनुभव को छोड़ देता है। बाहरी जगत् के साथ किसी संव्यवहार के बिना आत्म भीतरी जगत् के साथ संव्यवहार करता है। इस नए जगत् में आत्म अपनी स्वयं की ध्वनि, स्पर्श, दृष्टि तथ गंध आदि का साक्षात्कार करता है। सपनों का यह जगत् जाग्रत् अवस्था में बाहरी जगत् के विगत प्रभावों की सक्रियता से प्रक्षेपित हुआ जगत् है। स्वप्नित व्यक्ति का संसार जाग्रत् अवस्था में बाहरी जगत् के ही समान होता है। इनमें एकमात्र अंतर यह है कि ये दोनों अपनी सभी विशेषताओं के साथ आंतरिक रूप से पुनः सृजित होते हैं। कई बार केवल कुछ ही प्रभावों का प्रक्षेपण हो पाता है। इस स्थिति में मन की स्मृतियां प्रायः अस्पष्ट होती हैं। सुषुप्ति अवस्था में भौतिक गतिविधियों की अनुपस्थिति के कारण कोई बाहरी जगत् नहीं होता और इसी प्रकार मन की असक्रियता के कारण कोई आंतरिक जगत् भी नहीं होता। केवल अनैच्छिक क्रियायें जैसे रक्त का प्रवाह, श्वसन आदि घटित होती रहती हैं। भौतिक शरीर की किसी सचेत स्वैछिक क्रियाशीलता की अनुपस्थिति में बाहरी तथा भीतरी जगत् के किसी भी प्रकार के अनुभव के अभाव में सम्पूर्ण शून्यता बनी रहती है। आत्म बिना किसी तनाव के आराम करता है और इससे आत्म का व्यापक स्तर पर ताजगी प्राप्त होती है। आत्म की क्रियात्मकता में ये तीनों अवस्थायें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जाग्रत् अवस्था अन्य सभी अवस्थाओं में प्रबल है क्योंकि आत्म की विशेषताएं मुख्य रूप से भौतिक तथ्य तथा बाहरी क्रिया–कलापों से सम्बद्ध होती हैं। जाग्रत् अवस्था में अंकित प्रभावों से स्वप्न संसार का निर्धारण होता है। चेतना की अवस्थाओं पर व्यापक चर्चा के माध्यम से उपनिषद् आत्म की वास्तविक प्रकृति तथा महत्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन करता है। आत्म को निम्नलिखित विशेषताएं प्रदान की जाती हैं। आत्म अदृश्य (अदृष्टम्), इन्द्रिय–अगोचर (अव्यवहारम्), आनुभविक संव्यवहारों से परे (अग्राह्यम्), इन्द्रियों की पकड़ के परे (अलक्षणम्), अनुमान के किसी तार्किक आधार के बिना, अन–अनुमय, अविचारणीय, अवियरणीय है। आत्म वह है जिसमें सभी सांसारिक व्यवहार रूक जाते हैं (प्रपंचोपशमम्)। यह अपरिवर्तनीय, शुभ तथा अद्वैत (अद्वैतम्) है। इस सचेत सत् (इमपदह) को सबका कर्त्ता–धर्ता के रूप में यह पारलौकिकजगत् की समस्त

विविधताओं में भी शामिल है। यह सभी विविधताओं में अनुस्यूत है तथा सर्वज्ञाता है। यह सर्वव्यापक, आंतरिक नियंता है। यह सभी जीवों के अन्दर विद्यमान रहने से सबका निर्देशक भी है। यह ब्रह्माण्ड को उसकी समस्त विविधताओं के साथ उत्पन्न करता है तथा यह समस्त जगत् की उत्पत्ति एवं स्थिति का स्रोत है। यह निश्चित रूप से समस्त जीवों की उत्पत्ति तथा विलय का स्थल है।

9.10 ओउम और आत्म

माण्डूक्य उपनिषद् के प्रथम श्लोक में कहा गया है कि शब्द ओउम समस्त भूत, वर्तमान तथा भविष्य में विद्यमान भी है और समय के इन तीन कालों से परे भी है। सभी तत्वों को नामों तथा रूपों द्वारा दर्शाया जाता है। तत्वों के नाम ओउम से अभिन्न हैं। ब्रह्म परम है। इसे नाम एवं विषय (रूप) के मध्य विद्यमान सम्बन्ध के माध्यम से जाना जाता है। शब्द ओउम, परब्रह्म तथा अपरब्रह्म दोनों रूपों में समान है। एक स्पष्ट प्रतिपादन द्वारा इसे ब्रह्म की प्राप्ति के माध्यम एवं इससे ब्रह्म की समीपता दोनों रूपों में दर्शाया जाता है। भूत, वर्तमान और भविष्य को समय के तीन कालों द्वारा परिसीमित करके समझा जाता है। ये तीनों ओउम को उसके प्रभावों से अनुमानित किया जाता है, किन्तु इसे समय से परिसीमीत नहीं किया जा सकता। जो अव्यक्त है वस्तुतः यह ओउम है। शब्द तथा निर्देशित तत्व दोनों एक हैं। उपनिषद् में इस एकरूपता पर विशेष महत्व दिया गया है। सम्पूर्ण उपनिषद् में नाम और उसके विषय के एकीकरण पर बल देते हुए ओउम और ब्रह्म की ऐकता को स्थापित किया गया है। निश्चित रूप से जो कुछ भी है, सभी ब्रह्म हैं। यह आत्म ब्रह्म है। आत्म की चार अवस्थाएं हैं। जो ओउम है, यह ब्रह्म है। इस सर्वाधिक आन्तरिक आत्म को चार भागों में बांटा गया है।

आत्म को शब्द के दृष्टिकोण से भी समझा गया है। वास्तव में यह आत्म ओउम है। ओउम में तीन वर्ण या भाग हैं। ये वर्ण हैं ओ, उ तथा म। आत्म को ओउम के समान माना गया है। यह शब्द ओउम हालांकि भागों में विभाजित है किन्तु वर्णों में इनके आधार के रूप में विद्यमान है। ये भाग हैं ओ, उ तथा म। जाग्रत् अवस्था में वैश्वानर प्रथम वर्ण, ओ है। यह जो इसे जानता है निःसंदेह सभी वांछित वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है तथा अग्रणी बन जाता है। इनके माध्यम से ही समस्त विशिष्ट सम्बन्ध स्थापित किए जाते हैं। वैश्वानर, जाग्रत् अवस्थ में अपनी गतिविधियों के क्षेत्र के सम्बन्ध में स्थूल लौकिक परिप्रेक्ष्य में आत्म के समान हैं। इनकी व्यापकता के कारण ही इन्हें समरूपी कहा गया है। 'ओ' ध्वनि सभी ध्वनियों एवं भाषाई (सम्प्रेषणों) के मूल में निहित है। ध्वनि ओ वास्तव में समस्त वाणी है। (अ.अ. 2, 3, 7, 13) इसी प्रकार, वैश्वानर में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्याप्त है। इसीलिए कहा जाता है कि शब्द तथा उसके द्वारा निर्देशित वस्तु समान है।

स्वप्न की अवस्था तैजस ओउम के दूसरे शब्द उ के समान है। इन दोनों में उत्कृष्टता तथा मध्यवर्तिता की समानता पाई जाती है। जिसे इसका ज्ञान हो जाता है, उसमें ज्ञान का स्तर बढ़ जाता है तथा सभी के समान बन जाता है। यह सब तत्वों में समानता का अनुभव करने लगता है। जो इस सत्य को नहीं जानता वह ब्रह्म का ज्ञाता नहीं होता। यहाँ आत्म स्वप्न की अवस्था में है तथा उसकी गतिविधियों का क्षेत्र दूसरा वर्ण, उकार है। आत्म तथा दूसरे वर्ण में उत्कृष्टता मानी जाती है। चूंकि वर्ण उ वर्ण ओ से बेहतर है इसलिए तैजस वैश्व से बेहतर है। और पुनः उ द्वारा ओ तथा म के मध्य की स्थिति प्राप्त होने के कारण तैजस वैश्व तथा प्राज्ञ के मध्य है। ज्ञान का स्तर बढ़ने से आत्म का स्तर बढ़ता है और वह समानता का अनुभव करता है तथा समान हो जाता है। तैजस अंतर्गामी चैतन्य है।

स्वप्न अवस्था में प्राज्ञ अपनी गतिविधियों के क्षेत्र के साथ वर्ण म है। मापन और समावेशन इन दोनों के गुण हैं। ज्ञानी पुरुष इन सबको माप लेता है और समावेशन कर लेता है। मापन का अर्थ स्पष्ट करने के उद्देश्य से सम–युक्ति का प्रयोग किया गया है। जिस प्रकार बाजरे को प्रस्थ नामक पात्र द्वारा मापा जाता है इसी प्रकार वैश्व तथा तैजस को विलय तथा उद्भव के दौरान प्राज्ञ में इनके प्रवेश तथा बाहर आने के आधार पर मापा जाता है। इसी प्रकार, शब्द ओउम के उच्चारण के अंत में तथा उसके पुनःउच्चारण के समय वर्ण ओ तथा उ अंतिम वर्ण म में प्रवेश करते प्रतीत होते हैं ताकि पुनः बाहर आ सकें। समावेशन विलयित तथा एकीकृत हो जाता है। इसी प्रकार, निद्रा के समय वैश्व तथा तैजस प्राज्ञ मे विलयित हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य को ज्ञान प्राप्त होता है। यह इस सबको मापता है अर्थात उसे ब्रह्माण्ड के यथार्थ का ज्ञान हो जाता है। यह अवशोषण का स्थान बन जाता है। आत्म अपनी अवस्था में संसार की उत्पत्ति का कारण है। यहाँ उल्लेखनीय अनुपूरक परिणाम प्राथमिक माध्यमों की प्रशंसा के माध्यम से वर्णित है।

अविभाज्य ओउम तुरीय है। यह सभी परम्परागत व्यवहारों से परे भौतिक जगत् की निषेधता की सीमा है। यह शुभ और अद्वैत है। अतः ओउम शुद्ध आत्म है। जिसे इसका ज्ञान हो जाता है यह स्वः आत्म के माध्यम से परम आत्म में प्रवेश कर जाता है। अविभाज्य ओउम के रूप में चौथी तुरीयावस्था परम आत्म ही है यह नामों तथा नामित की विलुप्ति के कारण व्यावहारिक सम्बन्धों के परे केवल मन तथा वाक् का रूप है। यह लौकिक अस्तित्व की चरम अभिव्यक्ति एवं जगत् के निषेध की सीमा है। व्यक्ति जिसे इस तथ्य का ज्ञान हो जाता है कि आत्म शब्द ओउम का समरूप है, शुभ तथा अद्वैत है, वह अपने स्वयं के व्यावहारिक आत्म के माध्यम से अपने स्वयं के परमात्म में प्रवेश कर जाता है। इस परम सत्य को जानने वाला ही ब्रह्म को जानता है। यह तीसरी अवस्था की स्थिरता को नष्ट करके परम आत्म में प्रवेश करता है। और इस प्रकार उसका पुनः जन्म नहीं होता क्योंकि तुरीय में सृजन की गुप्त ऊर्जा नहीं होती। जब सांप रस्सी पर अध्यारोपित होता है तो रस्सी तथा सांप का विभेद हो जाने पर सर्प रस्सी का विलोप हो जाता है, तो उन व्यक्तियों को जो विभेद करने में सक्षम हो जाते हैं उनकी बुद्धि में विद्यमान भूत हृदय सर्प के प्रभाव पुनः नजर नहीं आते हैं। तथापि ऐसे सन्यासी व्यक्ति जो अभी भी स्वयं को जिज्ञासु मानते हैं तथा जिनकी बुद्धि अल्प या औसत है तथा वे पुण्य के मार्ग पर चलते हैं और जो ओउम के वर्णों की सामान्य संरचना और अवस्थाओं को जानते हैं तथा सामने उपस्थिति आत्म और शब्द ओउम पर जब सही रूप में ध्यान लगाते हैं तो उनके लिये ओउम ब्रह्म की प्राप्ति में सहायक होता है।

बोध प्रश्न 2

ध्यातव्य : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1. सुषुप्ति अवस्था के बोध प्रारूप का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2. चेतना की चौथी अवस्था का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3. उपनिषद् अक्षर ओउम तथा आत्म की चेतना की अवस्थाओं की पहचान कैसे करता है?

.....

.....

.....

.....

.....

9.11 सारांश

माण्डूक्य उपनिषद् अपने बारह श्लोकों में समाहित विचारों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करता है। यह उपनिषद् समस्त मानव अनुभवों की तीन अवस्थाओं यथा जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति का वर्णन करता है। उपनिषद् चेतना की चार अवस्थाओं का गूढ़ विश्लेषण प्रस्तुत करता है। आत्म की जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति, तीन अवस्थाएं होती हैं। जाग्रत् अवस्था में आत्म बाहरी स्थूल वस्तुओं के सामान्य संसार के प्रति जागरूक होता है। यह स्थूल वस्तुओं का भोग करता है। आत्म, बाहरी वस्तुओं के बोध के लिए शरीर पर आश्रित होता है। चेतना की दूसरी अवस्था स्वप्न अवस्था है। यहां आत्म सूक्ष्म वस्तुओं का भोग करता है। स्वप्नित व्यक्ति का जगत् जाग्रत् अनुभवों में अभिग्रहित सामग्री से निर्मित होता है। आत्म इन्द्रिय संवेदनाओं तथा भौतिक शरीर के बन्धनों से विमुक्त होकर विचरण करता है। तीसरी अवस्था सुषुप्ति अर्थात गहरी निंद्रा की अवस्था है। इस अवस्था में वस्तुओं के स्वप्न तथा वस्तुओं की इच्छा विद्यमान नहीं रहती है। सुषुप्ति में जाग्रत् तथा स्वप्न अवस्था के सभी अनुभव विलुप्त हो जाते हैं। आत्म अस्थायी रूप से ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तथा क्षणभर के लिए परमानन्द को प्राप्त कर लेता है। सुषुप्ति अवस्था में आत्म सभी इच्छाओं से ऊपर उठकर समस्त बाह्य व आंतरिक वस्तुओं की अनुभूति से मुक्त हो जाता है। ऊपर उठ जाता है तथा बाहरी तथा आन्तरिक तत्वों के मुक्त हो जाता है। यह तत्वहीन ज्ञान विषय परिस्थिति में लीन हो जाता है। उपनिषद् में चेतना की चौथी अवस्था (तुरीय) का विश्लेषण नकारात्मकता के द्वारा अनुभवातीत रूप में किया गया है। चौथी अवस्था को अन्य सभी तीन अवस्थाओं के आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

उपनिषद् तीन तत्वों यथा ओ, उ, म से बने अक्षर ओउम के सिद्धांत का प्रतिपादन करता है। इन्हें सादृश्य रूप से जागृति, स्वप्न तथा गहरी निंद्रा, सुषुप्ति की अवस्था कहा गया है। संसार में उसके स्थूल, सूक्ष्म तथा औपचारिक रूप में प्रकट परमात्मा को अक्षर ओउम तथा चेतना की तीन अवस्थाओं के विश्लेषण के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। चेतना

की चौथी अवस्था को अनुभवातीत चेतन अवस्था कहा गया है जिसे सर्व–सम्मिलित तथा अन्तिम वास्तविक परम के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ओउम अक्षर के मनन का सुझाव दिया गया है तथा ओउम के उच्चारण के लिए चार चरण बताए गए हैं। अ कार, उ कार तथा म कार से पहले मौन होता है। इस मौन को आत्मसात करने पर बल दिया गया है जिसे बोध कहते हैं। आत्म साक्षी है। उपनिषद् आत्मा के रूप में मनुष्य की सही प्रकृति का उद्घाटन करता है। यह, 'अयम् आत्मा ब्रह्म' आत्मा ब्रह्म है, के रूप में असीम स्वरूप को प्रमाणित करता है। चेतना की चौथी अवस्था का निरपेक्ष रहस्यात्मक विलय का तत्व है। माण्डूक्य उपनिषद् में वर्णित इसका ज्ञान मनुष्य को मोक्ष की ओर ले जाता है।

9.12 कुंजी शब्द

आत्म : आत्म अपने स्वयं के परिदृश्य से पृथक् व्यक्तिगत तत्व हैं। आपके लिए आत्म आप हैं। किसी और के लिए आत्म स्वयं यह व्यक्ति है।

स्वप्न : स्वप्न निंद्रा के दौरान वर्णनात्मक रूप में चित्रों, ध्वनियों तथा भावनाओं की श्रृंखला होता है। स्वप्न विशिष्ट रूप से 5 से 45 मिनटों के भीतर समाप्त हो जाते हैं स्वप्न की विषय–वस्तु तथा उद्देश्यों को पूरी तरह से नहीं समझा गया है, यद्यपि ये सम्पूर्ण मानव इतिहास में रोमांच तथा मनोरंजन का विषय रहे हैं।

9.13 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

गम्भीरानन्द, स्वामी (ट्रान्स). *माण्डूक्य उपनिषद्*. कलकत्ताः अद्वैत आश्रम, 2000.

मेरसीपर, जीन, एल. *फ्रोम द उपनिषद्स टू अरबिन्दो*. बेंगलोरः ऐशियन ट्रेडिंग कॉरपोरेशन, 2001.

नायर, शान्था एन. *इकोस् ऑफ ऐनसियन्ट इण्डियन विजडम*. न्यू देल्हीः हेण्डबुक्स, 2008.

परमार्थानन्द, सरस्वति स्वामी. *इन्ट्रोडक्शन टू वेदान्त*. चेन्नईः योगमालिया, 2005.

प्रसाद, रामानुज. *नॉ द उपनिषद्स*. देल्हीः पुस्तक महल, 2006.

राधाकृष्णन, एस. *द प्रिन्सिपल उपनिषद्स*. देल्हीः ऑक्सफोर्ड प्रेस, 1953.

सिंह, बलबीर. *द फिलासाफी ऑफ उपनिषद्स*. न्यू देल्हीः आरनोल्ड हीनमेन, 1983.

हिन्दी अध्ययन सामग्री

माण्डूक्य उपनिषद, शांकरभाष्य सहित. गोरखपुरः गीताप्रेस, विक्रम सन्वत् 2062.

9.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. *माण्डूक्य उपनिषद्* में प्रत्येक क्षण के लिए आत्म को चेतना की अवस्था के अनुसार चार नामों यथा वैश्य, तैजस, प्राज्ञ तथा तुरीय के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये

नाम चेतना की संबंधित अवस्थाओं को दर्शाते हैं। भौतिक ब्रह्माण्ड समरूपी नियमों से बंधा हुआ है। यह सभी लोगों के लिए समान रूप से उपस्थित रहता है। जाग्रत् अवस्था मानव की एक सामान्य स्थिति है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति जगत् का अनुभव वैसे ही करता है जैसे जगत् है, इसमें कोई मतान्तर नहीं होता है। स्वप्न अवस्था आत्म की वह स्थिति है जब बाह्य संवेद तथा वस्तुएं अपनी भौतिक विशेषताओं के साथ उसके समक्ष उपस्थित नहीं रहती अपितु मानसिक छवियों के रूप में उपलब्ध रहती हैं। इस आत्म को तैजस, प्रकाशमयी का नाम दिया गया है। चेतना की अगली अवस्था सुषुप्ति अवस्था है। इसे प्राज्ञ कहते हैं जिसकी गतिविधियों का क्षेत्र सुषुप्ति (गहरी निद्रा) की अवस्था है। सुषुप्ति अवस्था में रहने वाले व्यक्ति को किसी सुखमूलक वस्तु की इच्छा नहीं होती है तथा वह कोई स्वप्न नहीं देखता है। सुषुप्ति अवस्था ज्ञान की वह अवस्था है जिसमें बाह्य तथा आन्तरिक तत्व अज्ञात होते हैं। चौथी अवस्था को तुरीय कहा जाता है क्योंकि यह शुद्ध चेतना, अनुभवातीत, नित्य अद्वैत की अवस्था है।

2. जाग्रत् अवस्था मानव की एक सामान्य स्थिति है। यहाँ कोई भी संसार का अनुभव वैसे ही पाता है जैसे संसार है, यहाँ कोई प्रतिबिम्ब नहीं है। संवेद–अनुबोधों तथा इच्छाओं के बंधन में जकड़े हुए आत्म जाग्रत् अवस्था में अपनी क्रियाएं करता है। जाग्रत् अवस्था के तत्व को वैश्व का नाम दिया गया है। चेतना की इस अवस्था में यह भौतिक, वास्तविक तथा बाहरी वस्तुओं का बोध प्राप्त करता है। जाग्रत् अवस्था आत्म का प्रथम चौथाई भाग है तथा इसके विषय–वैश्वानर की क्रिया क्षेत्र जाग्रत् अवस्था है। इस अवस्था में चेतना बाहरी वस्तुओं से जुड़ती है तथा इसके सात अंग और उन्नीस मुख हैं। सात अंग अग्निहोत्र यज्ञ की कल्पना द्वारा प्रदान किए गए हैं, जहाँ कहा गया है, 'स्वर्ग वास्तव में वैश्वनार–आत्म है जिसके आंख सूर्य हैं, वायु प्राण शक्ति है, अंतरिक्ष मध्य भाग है जल मूत्राषय, और पृथ्वी दो पैर हैं। आहवानिय अग्नि को उसका मुख माना गया है। इन सात अंगों को धारण करने वाला सप्तांग है। आत्म के उन्नीस मुख हैं। इनमें पाच ज्ञान इन्द्रियां तथा पांच क्रिया अंग हैं, पांच प्राण शक्तियां तथा मन, बुद्धि, अहं तथा मनसतत्व। ये अनुभव प्रवेश द्वार होने की दृष्टि से मुख हैं। चूंकि इन उपर्युक्त वर्णित प्रवेश मार्गों के माध्यम से वैश्वानर स्थूल वस्तुओं का भोग करता है अतः इसे स्थूल विषयों का भोगकर्त्ता कहा गया है। स्थूल वस्तुओं का रस जाग्रत् अवस्था में लिया जाता है।

बोध प्रश्न 2

1. सुषुप्ति अवस्था में रहने वाले व्यक्ति को किसी आनन्दमयी वस्तु की इच्छा नहीं होती है तथा वह कोई स्वप्न नहीं देखता। सुषुप्ति अवस्था ज्ञान के प्राप्ति की वह अवस्था है जिसमें बाह्य तथा आन्तरिक दोनों तत्व अज्ञात रहते हैं। जिस प्रकार अंधकार में अवबोधन सम्भव नहीं है, उसी प्रकार सुषुप्ति अवस्था में आन्तरिक व बाह्य रूपसे किसी प्रकार का अवबोधन सम्भव नहीं होता है। इस अवस्था में कोई इच्छा नहीं होती, कोई विचार उत्पन्न नहीं होते है। सभी प्रभाव एक हो जाते हैं तथा केवल ज्ञान तथा आनंद रह जाता है। सुषुप्ति अवस्था में आत्म संप्रत्ययात्मक आत्म होता है। अन्य दो स्थितियों में आत्म कल्पनाशील व अवबोधन करने वाला होता है। सुषुप्ति की अवस्था, जाग्रत् व स्वप्न अवस्थाओं की चेतना से बोध का प्रवेश मार्ग है। सुषुप्ति की अवस्था में वास्तविक जगत् का कोई ज्ञान नहीं रहता।

2. चौथी अवस्था को तुरीय कहा जाता है क्योंकि यह शुद्ध चेतना, अनुभवातीत, नित्य अद्वैत अवस्था है। *माण्डूक्य उपनिषद्* इस अवस्था को सीधे इसके सकारात्मक गुणों के

माध्यम से वर्णित नहीं करता। इस अवस्था का वर्णन निषेधात्मक पद्धति द्वारा किया जाता है। चतुर्थ अवस्था क्या नहीं है, से चतुर्थ अवस्था क्या है, को जाना गया है। तुरीय को केवल सकारात्मक विवरण द्वारा ही नहीं बल्कि गुणों के निषेध के रूप में दर्शाया जाता है। निषेधात्मक पद्धति के माध्यम से कुछ सकारात्मक रूप में स्थापित किया जाता है। तुरीय उस प्रत्येक विशेषता से वंचित है जिसका वर्णन संभव शब्दों के माध्यम से किया जा सकता है। यह शब्दों के माध्यम से वर्णनीय नहीं है। तुरीय अवस्था चेतना की यह अवस्था है जो आंतरिक जगत्, बाहरी जगत् तथा दोनों जगतों के प्रति सचेत नहीं है। यह चेतना का पुंज भी नहीं है। यह ना ही चेतन है और न ही अचेतन। यह अदृश्य है, आनुभविक संव्यवहारों से परे, सभी इन्द्रियों की पकड़ से परे, अननुमेय, अविचारणीय तथा अवर्णनीय है। वैध साक्ष्य आत्म केवल विश्वास में निहित है जिसमें सभी तथ्य लुप्त हो जाते हैं। यह अपरिवर्तनशील, शुभ तथा अद्वैत है। यह आत्म है और इसका ज्ञान प्राप्त करना मानवता का परम लक्ष्य है।

3. *माण्डूक्य उपनिषद्* के प्रथम श्लोक में कहा गया है कि शब्द ओउम भूत, वर्तमान तथा भविष्य सभी का आधार भी है तथा समय के इन तीन कालों से परे भी है। सभी तत्वों को नामों तथा रूपों द्वारा दर्शाया जाता है। तत्वों के नाम तत्व से तथा ओउम से भिन्न है। ब्रह्म परम है, इसे तत्वों के नाम एवं उसके विषय के मध्य विद्यमान सम्बन्ध के माध्यम से जाना जाता है। शब्द ओउम पर तथा अपर ब्रह्म दोनों रूपों में समान हैं एक स्पष्ट प्रतिपादन द्वारा इसे ब्रह्म की प्राप्ति के माध्यम एवं इससे ब्रह्म की समीपता दोनों रूपों में दर्शाया गया है। भूत, वर्तमान और भविष्य को समय के तीन कालों द्वारा परिसीमित करके समझा गया है। ये तीनों काल ओउम ही हैं। यहाँ तक कि समय के इन तीन कालों के परे जो कुछ है यह भी ओउम है। उसका उसके प्रभावों से अनुमान किया जाता है किन्तु उसे समय में परिसीमित नहीं किया जा सकता। जो अव्यक्त है वस्तुतः यह ओउम है। शब्द तथा शब्द से निर्देशित तत्व दोनों एक हैं। उपनिषद् में इस एकरूपता पर विशेष बल दिया गया है। सम्पूर्ण उपनिषद् में नाम और उसके विषय के एकीकरण पर बल देते हुए ओउम और ब्रह्म की एकता को स्थापित किया गया है। निश्चित रूप से जो कुछ भी है, सभी ब्रह्म है। यह आत्म ब्रह्म है। आत्म की चार अवस्थाएं हैं।